ISSN : 2321-3922
जनवरी– 2022
RNI-BIHHIN05394
वर्ष – 7 अंक–27

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

www.susambhavya.com

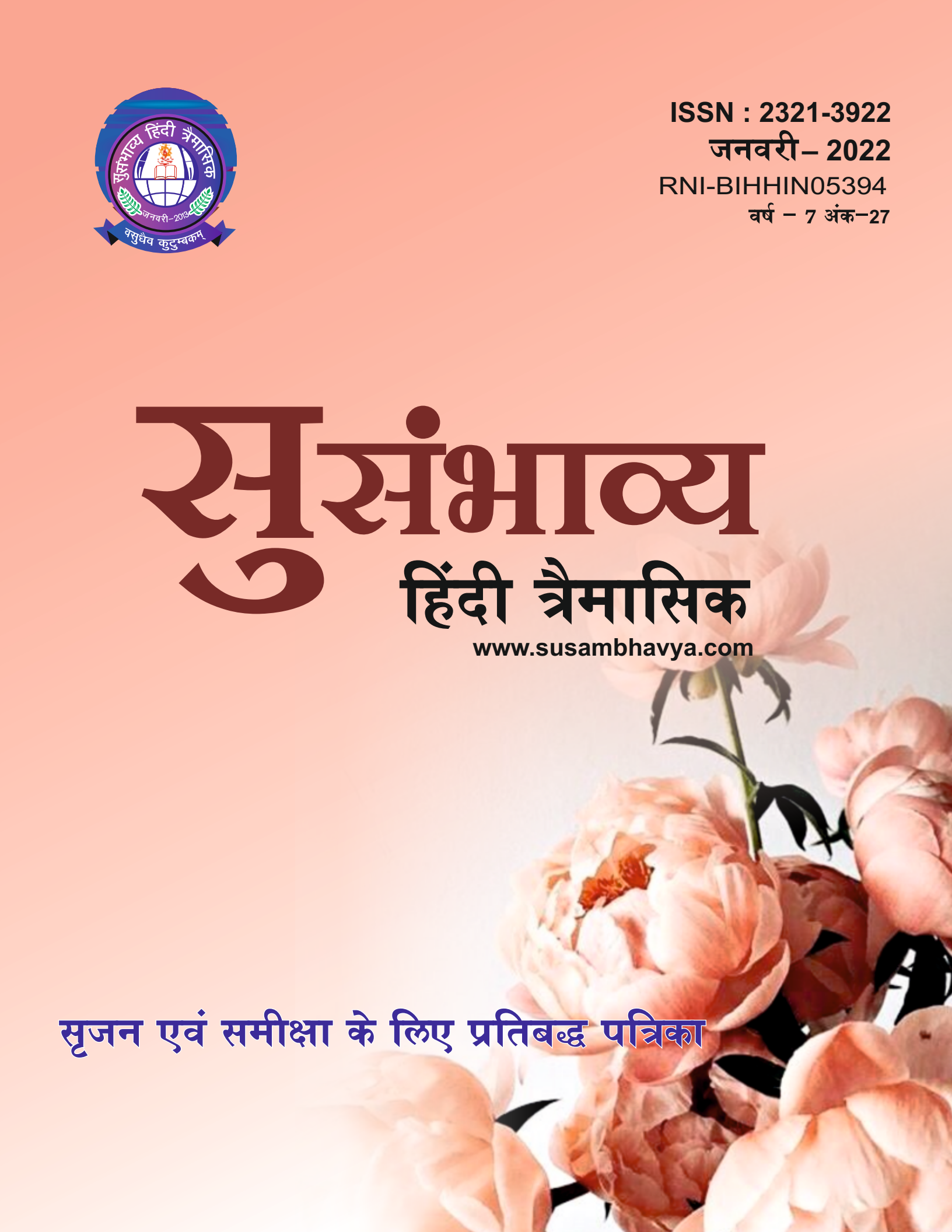

सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका

सुसंभाव्य

(सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका)

जनवरी–मार्च – 2022

प्रकाशन : 27 जनवरी 2013

श्री दयानन्द जायसवाल
संस्थापक–सह–प्रधान संपादक

डॉ. विजय कुमार सिंह
संयोजक

श्रीमती अनिता जायसवाल
संरक्षक

डॉ. गिरिजा शंकर मोदी
सम्पादक मंडल

अश्विनी प्रजावंशी
सम्पादक मंडल

श्रीमती छाया पाण्डेय
संस्थापक सदस्य

श्रीमती संयुक्ता गुप्ता
संस्थापक सदस्य

कार्यालय प्रभारी

बिरजू कुमार
भागलपुर
7004435995

सुमित भारती
कोलकाता
8757689138

सौरभ भारती
दिल्ली
8699170450

स्वत्वाधिकारी व प्रकाशक :

श्री दयानन्द जायसवाल

संपादन, संचालन, प्रबंधन एवं
समस्त व्यवस्था अवैतनिक एवं अव्यावसायिक ।
रचनाओं के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र
भागलपुर।

RNI No. : BIHHIN05394/2015
ISSN - 2321-3922
वर्ष–7, अंक–27

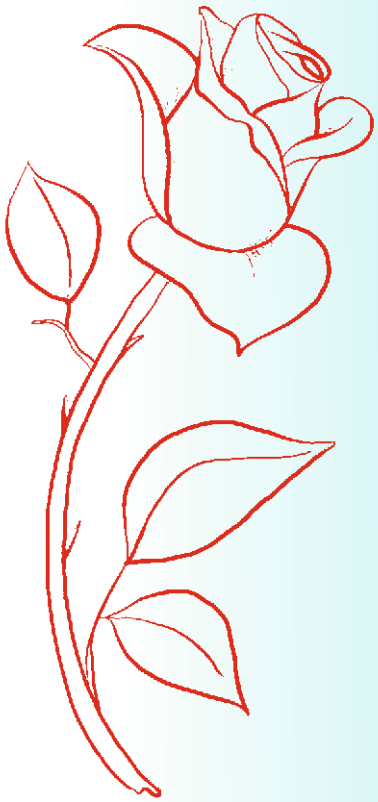

सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल

मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303
वेबसाईट : www.susambhavya.com
ई–मेल : dnj.sambhavya@gmail.com

RNI No. : BIHHIN05394/2015
ISSN - 2321-3922
जनवरी– मार्च–2022

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

वेबसाईट : www.susambhavya.com

आमंत्रण

'सुसंभाव्य' अंतर्राष्ट्रीय स्तर की हिंदी त्रैमासिक है जो वर्तमान समय में विश्व के विभिन्न देशों के पाठक सहित भारत के लगभग सभी शहरों के सहृदयों का स्नेह इस पत्रिका को प्राप्त है।

इसका ई–संस्करण विश्वग्राम के सभी सुधी पाठकों एवं स्नेहीजन के लिए www.susambhavya.com पर सहजता के साथ सुलभ है। मुद्रित संस्करण यथासंभव रचनाकारों, हिंदी के लिए समर्पित संस्था और संस्थानों को उपलब्ध कराया जाता है।

श्रेष्ठ चिंतन सहज–सरल अभिव्यक्ति के माध्यम से जब कोई व्यक्ति सार्वभौम होकर जन–गण में व्याप्त हो जाता है तब वह व्यक्ति से व्यक्तित्व और व्यक्तित्व से संस्थान बन जाता है। ऐसे महान विभूतियों से आग्रह है कि अप्रैल 2022 अंक में प्रकाशन हेतु अपनी मौलिक, नवीनतम एवं प्रतिनिधि रनचाएं अपने पत्राचार–पता के साथ, कोरियर या डाक से संपादक के पते पर भेजें।

आइये सब मिलकर सामाजिक सरोकार से संबंधित सार्वभौम, सार्वजनीन एवं श्रेष्ठ साहित्य के माध्यम से धर्म–मज़हब, जाति, लिंग, वर्ण, वर्ग और नस्ल–भेद की दीवार हटा दें और सिर्फ इंसान बनें तथा उत्तम ज्ञान एवं श्रेष्ठ आचरण से स्वयं का परिष्कार कर विश्वग्राम का सौभाग्य बनें।

संपादक
सुसंभाव्य हिन्दी त्रैमासिक
E-mail : dnj.sambhavya@gmail.com
Mob.: 9931240303

सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल
मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303

नोट : कृपया अपनी रचनाएँ kurtidev -010 में ही ई मेल से भेजें अन्यथा स्वीकृत नहीं होगी।

अनुक्रम

पुरोवाक्	संस्थापक की कलम से	दयानन्द जायसवाल	05
समीक्षा	बिहार के हिंदी साहित्य का इतिहास : एक परिचय	डॉ0 अरूण कुमार वर्मा	06
गीतिका	गीतिका	गौरी शंकर वैश्य	07
समीक्षा	परख : विसंगतियों में से जन्म लेतीं लघुकथाएँ	विजय कुमार तिवारी	08
ग़ज़लें	ग़ज़लें	विकास	10
समीक्षा	सांस्कृतिक चेतना : समकालीन आदिवासी उपन्यास	डॉ0 रश्मि मालगी	11
समीक्षा	यथार्थवादी उपन्यास : फाँसी बाग	गोविन्द सेन	14
समीक्षा	समालोचना का राज खोजती किताब : गहरे पानी पैठ	रमेश खत्री	16
ग़ज़लें	गजलें –	दिनेश तपन	17
पुस्तक–समीक्षा	1. साहित्य और मानव मूल्य, 2. विहार की महिलाएँ, 3. पीरा, 4. ईशा : भोलानाथ कुशवाहा, 5. 30 गजलगो : 300 गजलें 6. मैंने समुद्र से कहा: उपन्यास, 7. आनन्द मंजरी : मुकरी संग्रह, 8. सत्यम् शिवम सुन्दरम् : निबंध संग्रह, 9. दरबान उँघते रहे, 10. स्वयं सिद्धा : सामाजिक उपन्यास, 11. पीडोफिलिक नागार्जुन विवादों और साजिशों के बीच, 12. खिड़कियों से झाँकती आँखें, 13. अंगिका बालगीत समग्र : डॉ0 अमरेन्द्र	दयानन्द जायसवाल	18
ग़ज़लें	गजलें	केशव शरण	32
समीक्षा	विवस्त्र की कहानियाँ	प्रताप दीक्षित	33
समीक्षा	शिलाएँ मुस्काती हैं	डॉ0 मनोहर अभय	35
कविताएँ	माँ भारती, भूत	डॉ0 अचल भारती	36
समीक्षा	अनुभव के धरातल पर प्रस्फुटित कहानियाँ	डॉ0 संजय चौहान	37
समीक्षा	असग़र बजाहत कृत–'जिस लाहौर नई देख्या ओ जम्याइ नई' नाटक का रंग शिल्प	असद खान	39
ग़ज़लें	गजलें	गोविन्द सेन	42
आलेख	मुक्तछंद के प्रवर्तक – महाकवि निराला	डॉ0 नलिनी श्रीवास्तव	43
कविताएँ	कतरा–कतरा ओस, शब्द, ताप	डॉ0 रानी श्रीवास्तव	45
आलेख	आज की कविता और नारीवाद	डॉ0 पंकज साहा	46
ग़ज़लें	गजलें –	सतीश गुप्ता	47
आलेख	21 वीं सदी में सोशल मीडिया	दत्तात्रय आसाराम किटाले	48
कविताएँ	गुमसुम–गुमसुम मन रहता है, थक गई एक प्यासी नदी	सुरेन्द्र गुप्त 'सीकर'	49
कहानी	पप्पु पास हो गया	मदन गुप्ता 'सपाटु'	50
कहानी	एक अकेली	डॉ. रंजना जायसवाल	51
कविताएँ	रंगरेजा, बिखरेंगे ही	प्रगति गुप्ता	53
कहानी	कुर्सी	प्रदीप उपाध्याय	54
कविताएँ	गीत सम्राट – नीरज, नीरज प्रयाण	डॉ0 कुसुम सिंह अविचल	55
लघुकथाएँ	जब उसने गाड़ी ठोंकी, निगेटिव रिपोर्ट का कमाल	सुरेश सौरभ, घनश्याम अग्रवाल	56
कविता	समय मीले या न मिले – तुम आना	सुभाष चंद्र झा	57
कविताएँ	हल्दी–कुमकुम, जाने कब बूढ़ी हो गयी माँ	सत्या शर्मा 'कीर्ति'	59
कविताएँ	इंतजार आँखों का, कितने आसमान, खेत के मेड़ों से, खिलेगी केतकी	शांति सुमन	60

नववर्ष

स्वागत! जीवन के नवल वर्ष आओ, नूतन-निर्माण लिये,
इस महा ज़ागरण के युग में जाग्रत जीवन अभिमान लिये;

दीनों दुखियों का त्राण लिये मानवता का कल्याण लिये,
स्वागत! नवयुग के नवल वर्ष! तुम आओ स्वर्ण-विहान लिये

संसार क्षितिज पर महाक्रान्ति की ज्वालाओं के गान लिये,
मेरे भारत के लिये नई प्रेरणा नया उत्थान लिये;

मुर्दा शरीर में नये प्राण, प्राणों में नव अरमान लिये
स्वागत! स्वागत! मेरे आगत! तुम आओ स्वर्ण विहान लिये!

युग-युग तक पिसते आये कृषकों को जीवन-दान लिये,
कंकाल-मात्र रह गये शेष मजदूरों का नव त्राण लिये;

श्रमिकों का नव संगठन लिये, पददलितों का उत्थान लिये;
स्वागत! स्वागत! मेरे आगत! तुम आओ स्वर्ण विहान लिये!

सत्ताधारी साम्राज्यवाद के मद का चिर-अवसान लिये;
दुर्बल को अभयदान, भूखे को रोटी का सामान लिये;

जीवन में नूतन क्रान्ति, क्रान्ति में नये-नये बलिदान लिये,
स्वागत! जीवन के नवल वर्ष आओ, तुम स्वर्ण विहान लिये!

सोहन लाल द्विवेदी

पुरोवाक्

दयानन्द जायसवाल

संस्थापक की कलम से

आजादी के बाद शहरीकरण का दौर आरंभ हुआ और फिर हम सभी एक–एक कर गाँव, कस्बों को भूलना आरंभ कर दिए। विकास के नाम पर जो कुछ हो रहा है और जो कुछ भी हुआ वह शहरों के लिए हुआ। आज भी गाँव अपनी सभ्यता और संस्कृति को बचाए रखने का प्रयास कर रहा है। भारत गाँव में बसता है यह बात सही है। लेकिन आज गाँव का प्रयोग सत्ता और शहर के लिए हो रहा है। आज जितने भी कल–कारखाने लगे वो शहर में लगे, जिसके कारण लोग रोजी–रोजगार को लेकर गाँव से पलायन कर शहर की ओर अपना रुख किए। यही कारण है कि लोगों का गाँव छूटता गया। साहित्य की बात करें तो जितने भी पुराने लेखक हुए वे गाँव के हुए और उनका गाँव से जुड़ाव रहा। ऐसे कई उदाहरण हमारे बीच हैं। गाँव की प्रतिभा ही देश में अपना दमखम दिखाती रही। लेकिन आज परिदृश्य बदल चुका है। पर इंसान अपनी स्मृति की आधारशिला पर टिका होता है। उसकी स्मृतियाँ, उसकी अस्मिता है और ये स्मृतियाँ ही उसके वर्त्तमान को अतीत से जोड़ती है। हम शायद यह भूल सकते हैं कि पुस्तक कहाँ रखी है, पर यह नहीं भूलते कि वर्ग में संस्कृत के शिक्षक पढ़ाते समय कैसे पीटते थे। कोई भी छोटी बात, कोई गंध, कोई स्पर्श क्यों न हो झट से हमें पुरानी स्मृतियों से जोड़ देते हैं।

आजादी के बाद का जो लेखन है, उसमें लेखकों ने अनुभव पर बहुत बल दिया है। लेखक जिस परिवेश में जी रहा है, वही महत्व का है। दृष्टि, कथ्य या पात्र के अनुकूल कमजोर होते चले गए। साहित्य में अनुभव की प्रामाणिकता के संदर्भ में एक तरह से गाँव के परिवेश में जिए हुए लेखकों को, गाँव से संदर्भित अनुभवों को उद्घाटित करने का एक बहुत बड़ा आधार मिला। दूसरी बात यह है कि आजादी के बाद राजनीति स्तर पर भी गाँव को महत्त्व दिया गया। यह सही है कि गाँव में असुविधाएँ हैं और अनेक तबकों के लोग, अनेक पेशों के लोग और अनेक दृष्टियों के लोग हैं जो अपना विकास चाहते हैं। और जब गाँव का आदमी शहर की ओर आता है–वह चाहे रेणु ही क्यों न हों, जबकि साहित्यकार के लिए कोई भी जमीन हो या प्रदेश वर्जित नहीं है। दृष्टव्य है कि हम जिस जमीन को उठा रहे हैं, उस जमीन के साथ हमारा अनुभवात्मक संबंध कितना गहरा है। यूँ तो साहित्यकार के लिए न गाँव उपेक्षित है न शहर। हमारे लिए मुख्य यह है कि हम शहर या गाँव को कितना पहचानते हैं। अगर बिना समझे कुछ कह रहे हैं, तो हम साहित्य नहीं दे रहे हैं। अगर रेणु गाँव से शहर की ओर आए और शहर की समस्याओं पर लिखे तो कोई बुरी बात नहीं। लेकिन रेणु का गाँव से संदर्भित जो लेखन है वह अधिक गहरा क्यों है ?इसलिए कि वे गाँव की अपेक्षा शहर को इतनी गहराई से नहीं देख पाए।

साहित्य हमारी पूरी संश्लिष्ट जिन्दगी की तस्वीर पेश कर के सही प्रश्न को रेखांकित करता है और इसलिए पाठक या आलोचक जो कोई भी जब साहित्य से गुजरता है, तो वह उस जिन्दगी की सारी पीड़ा, सारा ताप, सारी विषमताओं का अनुभव करता हुआ चलता है। अपने समय की सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक स्थितियाँ साहित्य को उसकी गहराई तक प्रभावित करती हैं। युद्ध, क्रांति जैसी अपने समय की घटनाएँ साहित्यकारों को झकझोर देती हैं। रामायण और महाभारत में तत्कालीन आर्यों की सभ्यता और संस्कृति होती हैं। कालिदास और शेक्सपियर के नाटकों में उनके समय के समाज की झलक मिलती है। साहित्य समाज का केवल प्रतिबिम्ब ही नहीं है। वह समाज को प्रभावित भी करता है। मुगलकाल में भारतीय जनता अपनी राजनीति पराधीनता के कारण पूरी तरह निराश हो गई थी उस समय तुलसीदास की रामचरितमानस, स्वामी रामदास की दासबोध आदि रचनाओं ने उसे बड़ा सहारा दिया। फ्रांस की महान राज्य क्रांति के पीछे वहाँ के रूसो, वाल्टेयर और मोन्टेस्क्यू जैसे क्रांतिकारी लेखकों का बड़ा हाथ था। रूस के सामाजिक परिवर्तन में गोर्की, टॉल्सटाय और कार्लमार्क्स की कलम की शक्ति ने बहुत काम किया था। अपने देश के रचनाकारों को कैसे भूल सकता हूँ जिनकी कलम हृदय को बदलने में कारगर सिद्ध हुई। प्रेमचन्द की रंगभूमि, कर्मभूमि, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का भारत दर्शन, बालगंगाधर तिलक का गीता रहस्य, मैथिली शरण गुप्त का भारत–भारती, माखनलाल चतुर्वेदी की कविता पुष्प की अभिलाषा, सुभद्रा कुमारी चौहान की झांसी की रानी, जयशंकर प्रसाद की अरूण यह मधुमय देश हमारा, सुमित्रानन्दन पंत की ज्योति भूमि, जय भारत देश, इकबाल की 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दुस्तां हमारा' तथा बंकिमचन्द चटर्जी ने 'बंदेमातरम्' लिखकर जनमानस में राष्ट्र के प्रति सम्मान के वह भाव जागृत किए जो हम भारतवासियों को स्वर्णिम अतीत की याद दिलाती हैं।

एक बात तो है कि साहित्य में ग़ज़ब की शक्ति होती है। अच्छा साहित्य समाज पर अच्छा असर डालता ही है। मानवतावादी साहित्य ही समाज के लिए 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' का मार्ग प्रशस्त करता है। प्रेमचन्द ने लिखा है–"मेरे विचार से साहित्य की सर्वोत्तम परिभाषा जीवन की आलोचना है चाहे वह निबंध के रूप में, चाहे कहानियाँ अथवा काव्य के रूप में। उसे हमारे जीवन की आलोचना और व्यख्या करनी चाहिए।" साहित्यकारों की सर्जनात्मकता के लिए व्यापक विश्वदृष्टि अधिक मूल्यवान होती है क्योंकि जन–लेखन का उद्देश्य, वर्ग स्वार्थ के कारण विचारधारा से असहमत लोगों को भी भावधारा की, संवेदनात्मकता की सामाजिक सहमति से जोड़ना होता है। साहित्य के माध्यम से पाठकों को आशावादिता एवं जीवन के प्रति प्रभावी तथा सक्रिय दृष्टिकोण रखने की भावना जागृत करने का प्रयास करते रहना ही साहित्य का सार है।

आज समाज युद्ध और आतंक से त्रस्त है। साम्प्रदायिकता की आग में फँसकर मानवजीवन तहस–नहस हो रहा है, मृत्यु, भय, अनिश्चित भविष्य, रोजगार की समस्या आदि अनेक विसंगतियों के कारण मानव भयभीत है। सुसंभाव्य के साहित्यकार एवं रचनाकारों ने अपनी रचनाओं में व्याप्त आशा–निराशा, आस्था–अनास्था एवं सुख–दुःख को जो अभिव्यक्ति दी है तथा जीवन के विविध पहलुओं को जो बड़ी बारीकी के साथ प्रतिपादित करते आए हैं मैं उनके प्रति आभार व्यक्त करता हूँ तथा समस्त साहित्यचिंतकों के प्रति नववर्ष की हार्दिक शुभकामनाएँ प्रकट करता हूँ।

समीक्षा

बिहार के हिन्दी साहित्य का इतिहास एक परिचय

डॉ0 अरूण कुमार वर्मा,
पी0जी0टी0 हिन्दी,
ज0 नवोदय विद्यालय, पम्दी,
मंडला, मध्य प्रदेश, मो0–9754128757

बिहार के हिन्दी साहित्य का इतिहास, 'सुसंभाव्य' पत्रिका के संपादक दयानन्द जायसवालजी के अथक परिश्रम का प्रतिफल है। इस पुस्तक का प्रकाशन लक्की इंटनरनेशनल, संगम विहार, नई दिल्ली–2021 से हुआ है। यह पुस्तक किसी राज्य के हिन्दी साहित्य पर संभवतः पहली पुस्तक होगी। इस तरह की परम्परा की शुरुआत दयानन्दजी की नवाचारी सोच का परिणाम है। निश्चित ही अन्य रचनाकारों को भी इस दिशा में प्रेरणा मिलेगी और आशा है कि आने वाले समय में हर राज्यों का अलग–अलग हिन्दी साहित्य का इतिहास सामने आयेगा। ऐतिहासिक धरोहर की दृष्टि से बिहार एक ऐसा राज्य है जहाँ इतिहास और साहित्य की परंपरा की विरासत काफी प्राचीन और समृद्धशाली रही है। जहाँ पढ़ने और लिखने की पर्याप्त सामग्री उपलब्ध हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की दिशा में एक सराहनीय कदम दयानन्द जायसवाल जी द्वारा उठाया गया है। निश्चित ही हिन्दी जगत् इससे लाभान्वित होगा।

इतिहास लेखन का कार्य आसान नहीं है। रचना और रचनाकारों से जुड़ी जानकारियों की खोज तथा तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक परिस्थितियों का अध्ययन कर जानकारी प्रस्तुत करना प्रमुख शर्त होती है। इसकी पूर्ति बिहार के हिन्दी साहित्य के इतिहास में परिलक्षित होती है। अपनी इतिहासपरक दृष्टि की स्पष्टता लेखक ने प्राक्कथन में दिया है–"इतिहास सिर्फ पढ़ने की विषय वस्तु नहीं बल्कि समाज को समझने और बदलने का उपकरण है। इतिहास के अंतर्गत हम जिस विषय का अध्ययन करते हैं, उसमें अब तक घटित घटनाओं या उससे संबंध रखने वाली घटनाओं का कालक्रमानुसार वर्णन होता है अथवा कह सकते हैं कि प्राचीनता से नवीनता की ओर आने वाली मानव की विशिष्ट घटनाएं जिसका निष्पक्ष और विवेचनात्मक वर्णन हो वही इतिहास है।" आगे वे लिखते हैं "साहित्य परंपरा रूपों को तोड़ने का प्रयास नहीं है बल्कि परिस्थितिजन्य बाधाओं से लड़ने की चेतना उत्पन्न करता है। इसमें आए बदलाव, संघर्ष और सार्वभौमिकता के लिए हमें सचेत करता है। यह न तो साधारण परिभाषा के अनुसार विज्ञान है और न केवल काल्पनिक दर्शन अथवा साहित्यिक रचना, बल्कि सबके यथोचित मिश्रण से इतिहास का स्वरूप रचा जाता है।" इसी ऐतिहासिक मानकों के साथ लेखक ने इस महत्वपूर्ण ग्रंथ का सृजन किया है जिसकी झलक ग्रंथ में परिलक्षित होती है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन में काल निर्धारण तथा नामकरण प्रमुख समस्या रही है। आदिकाल को लेकर आज भी गुत्थी सुलझी नहीं है। जायसवाल जी इस समस्या पर केन्द्रित न होते हुए रचनाकार का परिचय, रचना की विशेषता से ध्यान केन्द्रित किया है। अब तक प्रचलित काल विभाजन को आधार मानते हुए बिहार के हिन्दी साहित्य को पाँच भागों में बाँटा गया है जो निम्न लिखित है–

1. बिहार के हिन्दी साहित्य का प्राचीनकाल– 600 ई.से 1375 ई. तक (सातवीं शती के मध्य से चौदहवीं शती के मध्य तक)
2. बिहार के हिन्दी साहित्य का पूर्व मध्यकाल– 1376ई. से 1750 ई. तक (चौदहवीं शती से 18वीं शती तक)
3. बिहार के हिन्दी साहित्य का उत्तर मध्यकाल–1751 ई. से 1900 ई. तक (18वीं शती से 19वीं शती तक)
4. बिहार के हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल–1901 ई. से 1960 ई. तक (बीसवीं शती)
5. बिहार के हिन्दी साहित्य का वैविध्य काल–1961 ई. से अद्यतन (बीसवीं शती से 21वीं शती)

लेखक ने वैविध्य काल नया नामकरण किया है। अब तक उपलब्ध हिन्दी साहित्य के इतिहास में यह नाम नहीं मिलता है। इस काल में साहित्य की प्रवृत्ति और विविधता को देखते हुए यह नामकरण उचित ही लगता है। इस नामकरण के तर्क में लेखक ने पुस्तक में अपना दृष्टिकोण स्पष्ट किया है।–

'बिहार के हिन्दी साहित्य का इतिहास' लेखन में दयानंद जायसवालजी ने बहुत श्रम किया है। रचनाकारों का परिचय और उनकी प्रवृत्ति का एकत्रीकरण का कार्य लेखक ने सतह तक जाकर किया है जिसके कारण बहुत सारे नये साहित्यकारों को भी स्थान मिलना सुनिश्चित हो सका है और इसलिए यह ग्रंथ भी 822 पृष्ठों में पूरा हो सका है तथा बिहार के 861 रचनाकारों को स्थान मिला है जो संभवतः अपनी विशालता के लिए भी जाना जायेगा। बिहार के हिन्दी साहित्य का प्राचीनकाल की शुरुआत सरहपा से शुरु होकर शबरपा, लुइपा से होते हुए विद्यापति और जोतीश्वर ठाकुर तक आकर समाप्त होता है, साथ ही अन्य बहुत से रचनाकारों को सामने लाने का कार्य किया गया है। पूर्व मध्यकाल के अंतर्गत कृष्णदास, चतुर्भुजदास तथा दरियासाहब जैसे प्रमुख कवियों के साथ अन्य कवियों का वर्णन मिलता है। उत्तर मध्यकाल में सदल मिश्र के साथ अन्य कवियों का वर्णन मिलता है। उत्तर मध्यकाल में बिहार में प्रतिनिधि कवियों का अभाव दिखता है। लेखक ने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म उनके ननिहाल साहिबगंज के राजमहल, बिहार में दर्शाया है। इससे उनका जुड़ाव बिहार से माना जा सकता है। उपन्यासकार देवकी नंदनखत्री का जन्म समस्तीपुर बिहार प्रांत ही था। कवि और नाटककार भिखारी ठाकुर इसी युग में पैदा हुए थे। उन्होंने 'विदेशिया' नाटक लिखकर ख्याति पाई जो भोजपुरी के जनकवि के रूप में जाने जाते हैं। राहुल सांकृत्यायन की जन्मस्थली भले उत्तर प्रदेश रही हो परंतु उनकी कर्मस्थली बिहार ही थी। उपन्यासकार शिवपूजन सहाय का जन्म भोजपुर में प्रमुख नाम कवि, गद्यकार, निबंध, आलोचक रामधारी सिंह दिनकर जी का जन्म बिहार ही है। इन्होंने हुंकार के कवि के रूप में विशेष ख्याति पायी। डॉ0 कामिल बुल्के का कर्मस्थल भी बिहार ही रहा है। ये संत जेवियर कॉलेज रांची में हिन्दी के विभागाध्यक्ष रहे। बाबा नागार्जुन की धरती भी बिहार ही है। गोपाल सिंह नेपाली जी का जन्म पश्चिमी चंपारण के बेतिया में हुआ था। आरसी प्रसाद सिंह समस्तीपुर में जन्मे। जानकीवल्लभ शास्त्री, फणीश्वर नाथ रेणु, डॉ0 नर्मदेश्वर प्रसाद, डॉ0 वासुदेव नन्दन प्रसाद, डॉ0 गोपाल राय, रासबिहारी पाण्डेय, अरूण कमल, डॉ0 भारत यायावर, उषा किरण, मृदुला सिंहा आदि प्रमुख रचनाकार बिहार की माटी में जन्मे, का साहित्यिक परिचय तथा प्रवृत्तियों के साथ रचना के महत्वपूर्ण अंश उद्धृत किए हैं। हिन्दी

साहित्य इन प्रमुख रचनाकारों के नाम और परिचय को मोहताज नहीं है फिर भी इन्हें उद्धृत न करने से कोई भी साहित्य का इतिहास पूर्णता को नहीं प्राप्त हो सकता है। जायसवालजी ने ऐसे रचनाकारों को भी सामने लाया है जो साहित्य साधना में रत हैं और बेहतरीन साहित्य लिख रहे हैं। इसी क्रम में अरूण कुमार सिन्हा का नाम विस्मृत नहीं किया जा सकता। उनकी सद्यः प्रकाशित पुस्तक 'इस सुबह की रात नहीं' कोरोना काल की त्रासदी और बचाव के उपाय पर बेहतरीन पुस्तक है। बिहार के हिन्दी साहित्य का इतिहास में ऐसे बहुत से साहित्य–सृजन सेवी को लेखक ने हमारे समक्ष लाया है और उन पर जानकारी इकट्ठा करने में कितना श्रमसाध्य किया होगा, इसका आकलन हम पुस्तक को पढ़कर सहज ही लगा सकते हैं।

बिहार के हिन्दी साहित्य के इतिहास के काल विभाजन का अंतिम काल बिहार के हिन्दी साहित्य का वैविध्य काल है। लेखक द्वारा दिया गया यह नामकरण नवीन और सारगर्भित है। निश्चित ही आज के साहित्य में वैविध्य है। यहाँ सब कुछ है लेकिन टिकता कुछ भी नहीं है। यह हमारी भागमभाग जिन्दगी का हिस्सा है। लेखक पुस्तक में इसके संदर्भ में लिखता है–"हिन्दी साहित्य के सिंहावलोकन के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वैविध्य काल हिन्दी साहित्य की सर्वांगीण उन्नति का युग है। इस युग में हिन्दी की सीमाओं का अनेकरूपता और विविधता का इसमें सम्यक् चित्रण हुआ है। यह साहित्य उत्तरोत्तर विकासशील रहा है। भले ही इसमें अल्पकालीन ह्रासोन्मुखता भी आई किन्तु यह चिरस्थायिनी नहीं लगती हैं। परिणामतः इस काल में साहित्य की नाना विधाओं में यर्थाथवादी जीवन की अभिव्यक्ति, अतीव ईमानदारी और प्रखरता कलात्मकता से हो रही है।"

बिहार के हिन्दी साहित्य का वैविध्य काल के अंतर्गत नये कवियों को स्थान मिला है। इसके अंतर्गत अंतिम रचनाकार राहुल शिवाय कवि और कथाकार हैं जिनका जन्म 1 मार्च 1993 है। आप अंदाजा लगा सकते हैं कि कितने युवा रचनाकारों को इसमें स्थान मिला है। पुस्तक में रचनाकारों को स्थान उनके जन्म तिथि के आधार पर दिया गया है। इस काल की शुरूआत शशिकला झा से तथा उनके बाद अनामिका जिनकी रचना 'टोकरी में दिगंत' जिस पर साहित्य अकादमी पुरस्कार दिया गया है। दिनकर जी तथा अरूण कमल के बाद अनामिका को बिहार के तीसरे साहित्यकार के रूप में सम्मानित किया गया है। इस प्रकार काव्य में नौ सौ अरसठ रचनाकारों को स्थान मिला है जो अपनी लेखनी से बिहार का नाम सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य जगत में रोशन कर रहे हैं। वैविध्य काल को समन्वयवाद कह कर अपनी बात को स्पष्ट किया है।

निष्कर्षतः 'बिहार के हिन्दी साहित्य का इतिहास' अपने आप में अपूर्व है। इसके अपूर्व होने के दो कारण हैं। प्रथम यह कि किसी राज्य का यह पहला हिन्दी साहित्य का इतिहास है। दूसरा इसकी विशालता जिसमें बहुत सारे रचनाकारों को स्थान मिला है। दयानंद जायसवालजी के असाधारण परिश्रम का प्रतिफल है कि उन्होंने ऐसे रचनाकारों को एकत्रित किया है जिनका पूर्व में कहीं वर्णन नहीं था। यह एक तरह से उनके शोध तथा खोजी प्रवृत्ति का परिणाम है। इसके प्रकाशन के उपरांत अन्य राज्यों को हिन्दी साहित्य का इतिहास लेखन की प्रेरणा मिलेगी और नये हिन्दी साहित्य के इतिहास का सृजन होगा। लेखक ने इस पुस्तक में बहुत सारी जानकारियों को समाहित किया है जो हिन्दी प्रेमियों के लिए आकर्षक है ही, कॉलेज छात्रों एवं शोध–छात्रों के लिए भी बहुत महत्वपूर्ण कृति साबित होगी। निश्चित ही 'बिहार के हिन्दी साहित्य का इतिहास' नामक ग्रंथ एक विशेष कृति के रूप में स्थापित होगा तथा लोगों को अपनी विशेषताओं से प्रभावित करेगा, ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है। प्रस्तुत आलेख उस पुस्तक से जुड़ने का एक संकेत मात्र है। पुस्तक को पढ़कर ही सच्चे अर्थों में इसे समझा जा सकता है और निश्चित ही हिन्दी जगत इससे लाभान्वित होगा।

पुस्तक–'बिहार के हिन्दी साहित्य का इतिहास', लेखक–दयानन्द जायसवाल, प्रकाशक– लक्की प्रकाशन, दिल्ली

गौरी शंकर वैश्य 'विनम्र'
विकासनगर, लखनऊ,
उत्तर प्रदेश
मो0–9956087585

गीतिका

उर को चुराने वाले, ये नयन हैं तुम्हारे
मदिरा पिलाने वाले, ये नयन हैं तुम्हारे

लगती रहस्यमय है, मेंहदी रची हथेली
सच को छिपाने वाले, ये नयन हैं तुम्हारे

कमनीय कामना ने, क्या रूप दे दिया है
सपने सजाने वाले, ये नयन हैं तुम्हारे

संकेत, मौन भाषा, पढ़ना सिखा रहे हैं
ज्ञानी बनाने वाले, ये नयन हैं तुम्हारे

उठने लगीं हृदय में, उद्दाम उर्मियाँ सी
नौका चलाने वाले, ये नयन हैं तुम्हारे

देते प्रणय निमंत्रण, रखते सतत नियंत्रण
पल–पल जगाने वाले, ये नयन हैं तुम्हारे

देखा तुम्हें है जबसे, मोहित हुआ हूँ तबसे
कविता रचाने वाले, ये नयन हैं तुम्हारे

नव दृष्टि सी मिली है, आशा कली खिली है
सद्पथ दिखाने वाले, ये नयन हैं तुम्हारे

सेचूँ 'विनम्र' किसको, मैं स्नेह श्रेय दे दूँ
सम्मान पाने वाले, ये नयन हैं तुम्हारे।

समीक्षा

परख
विसंगतियों में से जन्म लेतीं लघुकथाएँ

विजय कुमार तिवारी
भुवनेश्वर, (उड़ीसा)
मो.–9102939190

दुनिया भर में इस विधा को लेकर उचित–अनुचित चर्चायें होती रहती हैं। साहित्य के पुरोधाओं ने लघुकथा को सिरे से नकारना चाहा है और इसके लिए बहुत से तर्क–कुतर्क गढ़ते रहते हैं। हिन्दी–भोजपुरी के वरिष्ठ साहित्यकार श्री भगवती प्रसार द्विवेदी जी ने अपने लघुकथा संग्रह, ''सदी का सच'' में ''लघुकथा परम्परा और प्रासंगिकता'' शीर्षक से विस्तार से शोधपरक लेख लिखा है।

हमें इसमें पड़े बिना इस विधा का आनन्द लेना चाहिए क्योंकि साहित्य की अन्य विधाओं की तरह लघुकथा लेखन शुरू से हो रहा है और दुनिया भर में लिखा जा रहा है। प्रभावशाली ढंग से जन–मानस को लघुकथाएँ झकझोरती हैं। सम्भवतया दुनिया भर में प्रकाशित होने वाली सभी साहित्यिक पत्रिकाओं में लघुकथाएँ सम्मान के साथ स्थान पाती हैं। इसका दो कारण समझ में आता है। एक तो पत्रिका में लेखों, कहानियों और अन्य बड़ी रचनाओं के संयोजन में हर दूसरे–तीसरे पृष्ठ पर कुछ स्थान खाली रह जाता 'परख', 'प्रभाव' व 'पहनावा' तीनों लघुकथाएँ अलग तरीके से ध्यान खींचती हैं और हमारी सोच, हमारा पहनावा, हमारी संस्कृति पर प्रश्न उठाती हैं। हम स्वतंत्र तो हैं परन्तु हमारे लिए कुछ मर्यादाएँ हैं। हम स्वेच्छाचारी ढंग से पाँव बाहर निकालते हैं तो लक्ष्मण रेखा पार करने जैसा होगा।

'ईमानदार' अद्भुत लघुकथा है। सामान्य शिष्टाचार हमारा कर्तव्य है, उसका निर्वाह हर हालत में करना चाहिए। एक संस्था के बड़े पदाधिकारी, मेरे मित्र अक्सर कहा करते थे, कोई आपके यहाँ आता है, आप उसके साथ सेवा–व्यवहार करते हैं। यह उसके विचार और व्यक्तित्व पर निर्भर करता है कि उसने आपकी सेवा को सामान्य शिष्टाचार माना है, चाटुकारिता माना है या असामान्य धृष्टता। आप कुछ नहीं कर सकते और तदनुसार फल भुगतने होंगे। यह लघुकथा सही स्थिति दर्शाती है।

हममें से अधिकांश लोग धर्मभीरू प्रकृति के हैं। आज के बदलते हालात में प्राचीन परम्पराओं को ढोना सहज नहीं रह गया है। परिवार के सभी सदस्य अपने–अपने तरीके से दूर हैं और स्वतंत्र भी। उनसे परम्परा के निर्वाहन की उम्मीद रखना बेमानी है। ऐसे लोग विदेशों में या देश के दूसरे हिस्से में रच–बस गये हैं। उन्हें परम्परा तो क्या, आपको भी छोड़ने में देर नहीं लगेगी। कहानी उन्हीं भावनाओं से जूझ रहे व्यक्ति की स्थिति दिखा रही है। उन्हें मन्दिर में अपने देवी–देवताओं को रख देने के बाद 'अंतिम दायित्व' के निर्वाहन का सुकून मिलता है। 'मूर्ख' लघुकथा हमारे लोलुप समाज की सत्यता दिखाती है। दहेज लोलुप व्यक्ति के लिए प्रेम, आदर्श जैसा कुछ भी महत्त्वपूर्ण नहीं है, सब कुछ सेटिल हो रहा है। यह हमारे समाज की दशा–दिशा है। उसी तरह आपसी सम्बधों पर व्यंग्य करती है और धन के लिए बंटवारे के लोभ की मानसिकता दिखाती लघुकथा 'देखभाल की चिन्ता' पठनीय है। दुख होता है कि हमारे सारे संबंध स्वार्थ पूर्ण होते जा रहे हैं और हमारा समाज स्वस्थ मानसिकता से दूर होता जा रहा है। लोग समझते नहीं, इस सृष्टि में सब कुछ लौटकर मिलता है। 'कितना साम्य' लघुकथा इसी भावना को पुष्टी करती दिख रही है। अगली पीढ़ी, पिछली पीढ़ी से दुखी होती है, बदला लेने की घटित होती है। कहानी सावधान करती है। डॉ. प्रदीप उपाध्याय जी समाज में, अपने आसपास हो रहे घटनाक्रमों की गहरी छानबीन करते हैं, अपनी परम्परागत मर्यादाओं को समझते हैं और लेखन के माध्यम से सामाजिक चेतना चाहते हैं। 'माँ' आयातित प्रदूषित संस्कृति पर अद्भुत व्यंग्य करती शायद सबसे छोटी लघुकथा है। यह पंक्ति शिरोधार्य करने लायक है, ''ठीक कहते हो। लेकिन उन लोगों के लिए मदर्स–डे हो सकता है किन्तु मेरे पास तो साक्षात मेरी माँ है माँ।''

लघुकथाकार 'संवेदनशीलता' शीर्षक की कहानी में संवेदना खोज रहा है। हमारे आसपास ऐसे ही लोग हैं और उनका सम्पूर्ण जीवन ढकोसलों से भरा है। कभी–कभी लगता है, ऐसे लोगों को कोई ज्ञान ही नहीं है और वे कभी अपने कर्मों, विचारों के बारे में सोचते ही नहीं। 'नौकरी' लघुकथा सुन्दर बन पड़ी है, पीढ़ियों की व्यथा और उल्लास का बयान करती है। नौकरी की अपनी बाध्यता है परन्तु संस्कार है तो रिश्ते प्रभावित करते ही हैं। दीपावली मनाने बेटा, बहू व बच्चे आ ही जाते हैं और श्रद्धा–प्रेम से गदगद मन पिता की तस्वीर के सामने नतमस्तक होता है। छोटी सी लघुकथा 'विरोध' में सबकी मानसिकता उजागर हो रही है। दुकान का आधा शटर गिराये रखना, खरीददार की अपनी जरूरतें, हुड़दंगियों और प्रशासन सबके विचार देखने योग्य हैं। उपाध्याय जी समाज के इन अन्तर्विरोधों को खूब समझते हैं और लिख डालते हैं। रिश्तों के मर्म और अन्तर्विरोध को 'फर्क' लघुकथा बड़े ही तरीके से चित्रित करती है। यह समझ घर–घर में हैं। धन, पद के साथ पीढ़ियों का अन्तराल भी समझने योग्य है। 'चरित्र' और 'अन्तर' जैसी लघुकथायें हमारी सोच पर आक्रमण करती हुई, वस्तुस्थिति प्रकट करती है। यही हमारी सोच और दशा है।

'स्टैण्डर्ड' हमारे समाज के दोहरे चरित्र को दिखाता है और भीतर के अन्तर्विरोधों में जीता रहता है। कहाँ से स्वस्थ समाज उभरेगा?अक्सर सुनने में आता है, कमजोर या गरीब लोग अच्छी से अच्छी सेवा करते हैं, आदर, सम्मान करते हैं। दरअसल उनके पास दिल होता है और वे हृदय से काम लेते हैं, दिमाग से या बुद्धि से नहीं। बहुत सही चित्रण है। उसी तरह 'दर्जा' लघुकथा है। उन्हें अमेरिका में अफ्रिका–एशियाई लोगों के प्रति होते व्यवहार पर बहुत दुख है और अपने ही देश में, अपने ही लोगों से व्यथित करते व्यवहार पर कोई ग्लानि नहीं है। ऐसे अनुभव सभी को होता है। 'कलुषित मन' वैसी ही सशक्त लघुकथा है। सर्वत्र ऐसे ही लोग भरे पड़े हैं, संत हों, बड़े पदाधिकारी हों या सुखी–सम्पन्न लोग। 'रसीद' में फरियाद बेजोड़ है। मियाद में से 'म' हटाकर पुनः याद थमा दिया गया। अद्भुत चिन्तन और शब्द का खेल। यही होता है। जनता के पास केवल यादें रहती हैं और उन्हीं के सहारे उम्मीद बँधी रहती है।

'ध्यान' सशक्त, मजबूत अवधारणा प्रस्तुत करती है और यह सबको स्वीकार करना चाहिए। सुमन का उत्तर सही है, ''बाबूजी, बच्चे गिरेंगे–पड़ेंगे नहीं तो मजबूत कैसे होंगे। उन्हें भी तो आगे जिंदगी की लड़ाई लड़ने के लिए अपने बल पर ही तैयार होना होगा। मैं इस तरह ध्यान रखकर उन्हें कमजोर नहीं करना चाहती।'' 'हिम्मत' में पत्नी की हिम्मत टूट रही है। यहाँ होता है पति–पत्नी का रिश्ता। दोनों

एक–दूसरे के सहारे लाचारी, बीमारी, कमजोरी में भी हिम्मत रखते हैं। 'प्रायश्चित के आँसू' अब निकालकर भी क्या होंगे?अपना किया हुआ सारा व्यवहार इसी जन्म में लौटकर आता है। हम घर–घर में ऐसी कहानियाँ सुनते, देखते हैं परन्तु चेतते नहीं।

'ऑफिस का अनुशासन' अच्छा व्यंग्य है। बड़े पदों पर बैठे लोगों के लिए अलग नियम है या वे स्वयं अपने लिए तय कर लेते हैं और नीचे वालों को अनुशासन के लिए हिदायतें देते रहते हैं। हमारे समाज की संवेदना लुप्त होती जा रही है। पति पत्नी को छोड़ देता है, बच्चे भी बड़े होकर माँ को त्याग देते हैं। उसकी मृत्यु से उसे भी मुक्ति मिलती है और परिजनों को भी। ऐसा तो नहीं होना चाहिए परन्तु होता ऐसा ही है। 'आत्मा की शांति' लगभग वैसी ही रचना है। पत्नी जब तक जीवित थी, स्वयं अय्याशी करते फिरते थे, मृत्यु के बाद दिखावा कर रहे हैं। यह कैसी सोच है और कैसा जीवन है?ज्योतिषियों और भविष्य बांचने वालों पर व्यंग्य करती रचना 'मारकेश' सही स्थिति दर्शाती है। जो होना है, होगा। हमें पहले से ही परेशान होने की आवश्यकता नहीं है। ऐसी जानकारियाँ हमें कमजोर करती हैं। एक पिता सालों से इस ऊहापोह में दुखी है और भयभीत भी। लड़की सब जानते हुए भी इस पर विश्वास नहीं करती और अपना प्रयास करती है, सफल होती है।

'कमाऊ पूत' और 'वफादारी की कीमत' जैसी कहानियाँ अपने तरीके से हमारी आँखें खोलती हैं और यथार्थ से परिचय करवाती हैं। 'अपराध बोध' हमें संदेश देती है, समय रहते हमने थोड़ी सतर्कता नहीं दिखाई तो पछताना ही पड़ेगा। रिश्तों को बचाने और अपराध बोध से बचने के लिए हमें सदैव तत्पर और सक्रिय रहना चाहिए।

डॉ. प्रदीप उपाध्याय जी अपने समाज की नब्ज पहचानते हैं और सशक्त तरीके से उस पर वार करते हैं। उनकी रचनाओं की यह भी विशेषता लग रही है, कहीं कोई शोर या हो–हल्ला नहीं करते, चुपके से मूल–भाव पर ऊँगली रखते हैं और चमत्कृत करते हैं। कहानी की खोज में बहुत दूर जाने की जरूरत नहीं पड़ती, उनके सारे पात्र हमारे घरों में, हमारे आसपास सर्वत्र मिलते हैं। उनकी रचनाओं को पढ़ते हुए समाज का जो चेहरा उभरता है, वह भयभीत करता है और चिन्तन करने के लिए प्रेरित करता है।

'अंधेरा' लघुकथा, गरीबों के घर उजियारे की तलाश है। सरकारी उपक्रम पर व्यंग्य भी है, दीवाली के दिन लाखों दीपक जलाये जाते हैं। गरीब लड़की को उन्हीं बचे–खुचे तेल–बाती से अपनी झोपड़ी रोशन करने की उम्मीद है, वह भी पूरा नहीं होता और उसका बाल मन सोचता है कि उसके घर में उजियारा कब होगा। 'जिन्न' हमारे समाज में व्याप्त गलत आदतों को भूत–प्रेत बताकर ओझा–देवा के षड्यन्त्र के शिकार होने की कहानी है। 'स्वतन्त्र निर्णय' के माध्यम से मायके और ससुराल के बीच डोलते यथार्थ को रेखांकित करती है यह लघुकथा। 'पहली लड़ाई' पेट की होती है, उसके बाद हक की या किसी अन्य की व्यवस्था पर चोट करती आज की सच्चाई है और उस व्यवस्था से टकराने पर नौकरी जाने का भय होता है। बहुतेरे ऐसी व्यवस्था में पिस रहे हैं। 'पितृ–दोष' से निजात पाने के लिए लगातार वर्षों से पूजा–पाठ करवाने के बावजूद पितर प्रसन्न नहीं हैं। लघुकथा के माध्यम से उचित प्रश्न उठाया गया है।

हमारे समाज में अंधविश्वास बहुत है, पढ़े–लिखे लोग भी प्रभावित रहते हैं। ईश्वरीय प्राण–चेतना भिन्न चीज है, हम वहाँ तक पहुँच नहीं पाते और अंधविश्वास में फंस जाते हैं। उपाध्याय जी की लघुकथाएँ इसके लिए सावधान करती दिखती हैं। जैसे–'समय का फेर' और 'सुहागिन'। मृत्यु के बाद की स्थिति–परिस्थिति और भोज पर उनकी कथाएँ जागरूक करती हैं। जैसे 'भगवान मालिक', 'स्तुति गान', 'अपने–पराये' और 'मुक्ति का उत्सव'। सभी लघुकथाओं में अलग–अलग भावों के दर्शन होते हैं। जैसे 'संसाधनों का रोना', 'कथनी', 'झगड़ालू'। हमारे बीच ऐसे लोग भरे पड़े हैं जिनके प्रवचन या उपदेश सदैव दूसरे के लिए होते हैं, जब अपने पर पड़ती ह, तब जीवन–गणित समझ में आता है।

उपाध्याय जी उन समस्याओं पर व्यंग्य करने से नहीं हिचकते जो समाज को और आज की राजनीति को प्रभावित किये हुए है। 'क्या कर्फ', 'आजादी' और 'इंतजार' कुछ ऐसी ही रचनाएँ हैं। ऐसे विषयों पर लिखना आज के दौर में खतरनाक होता जा रहा है परन्तु उपाध्याय जी वह साहस दिखाते हैं। कभी बातचीत में उन्होंने कहा था कि जीवन में व्याप्त नकारात्मकता को सामने लाना ही चाहिए। आखिर समाज का चेहरा विद्रूप है तो लेखक को अपने लेखन–धर्म का निर्वाह करना ही चाहिए।

'अकेलेपन की दवा' में एक ऐसा पक्ष सामने आता है जो मनोवैज्ञानिकता के साथ–साथ सामाजिक साख से जुड़ा हुआ है। हमारे सामने बार–बार यह प्रश्न उठाता ही है, जब कोई व्यक्ति अकेला रह जाये, पत्नी या पति गुजर जाये, बच्चे छोड़कर देश के दूसरे हिस्से में या विदेश में जा बसे, कोई देखने–सुनने वाला न हो, उम्र ढल रही हो, मन अकुलाता हो, भीतर बेचैनी हो तो कोई क्या करे। ऐसे में उँगली सभी उठाते हैं परन्तु कोई सहयोग करना नहीं चाहता। 'कैसा पछतावा' दो बहनों की बदलती स्थिति पर सटीक वर्णन है। तय तो हमें ही करना है कि हमें क्या चाहिए। बढ़ते हुए हमारे कदम जिधर जाये, उसके हानि–लाभ साथ–साथ मिलते हैं। बड़ी बहन को धन–सम्पत्ति है परन्तु अपनों की कमी है। दूसरी ओर छोटी बहन अपेक्षाकृत कमजोर है परन्तु बाल–बच्चों के साथ सुख और आनन्द में है।

कोरोना काल की महामारी को लेकर 'अ–मासूम सवाल' और 'ब–आधा हिस्सा' में बहुत ही मार्मिक दशा का चित्रण हुआ है। दुनिया भर में सर्वाधिक परेशानी गरीबों को हो रही है। सरकारों को नये सिरे से विचार करना चाहिए और सबसे अधिक ध्यान प्रभावित लोगों पर जाना चाहिए। 'वर्क फ्रॉम होम' में घर में काम करने वाली बाई का प्रश्न उचित ही है। सारे काम घर से नहीं हो सकते। 'बदलाव' लघुकथा में हमारा बदलता स्वरूप और विचार बखूबी उजागर हुए हैं। यही सच्चाई है। हमको–आपको पता हो या नहीं, बच्चे हमारे भीतर–बारह के सारे बदलाओं को पहले समझते हैं और अपनी सुरक्षा–व्यवस्था कर लेते हैं। भले ही हमारे सामने उनके विचार स्पष्ट नहीं होते हों, आपस में सच्चाई खुलकर बयान करते हैं। 'पुनर्वास' एक अलग तरह की मार्मिक कथा है। शहरीकरण और मार्गों के चौड़ीकरण के प्रयास में पेड़ काटे जाते हैं जिसका दुष्परिणाम होता है, उन पर बसने वाले परिंदे रातोंरात आश्रयहीन हो जाते हैं, उनका घर उजड़ जाता है। उसी तरह शहरों में गरीबों की झुग्गी–झोपड़ियाँ उजड़ जाती हैं। परिंदों को अन्य परिंदों का झुण्ड अपने साथ उड़ा ले जाता है परन्तु गरीब असहाय होकर रह जाते हैं। 'दृष्टि' वैसी ही मार्मिक छोटी कथा है जिसमें अंधा व्यक्ति बीच सड़क पर खड़ा है। छोटा सा बच्चा वस्तुस्थिति समझता है परन्तु गाड़ी में बैठा व्यक्ति अपना आक्रोश दिखाने में लगा है। ऐसी

हालात आये दिन हमारे सामने उजागर होते हैं और हम अपना बौनापन, अंधापन दिखा ही देते हैं। उपाध्याय जी ऐसे मानवीय संवेदनाओं को पहचानने में देर नहीं करते और सम्पूर्ण मानवता को संदेश देते हैं। इस तरह लेखन का गुरूतर दायित्व–निर्वहन सफलता पूर्वक करते हैं।

'चिंता' लघुकथा में माँ–बेटा एक–दूसरे की चिन्ता करते हैं परन्तु बेटा कोरोना–काल में लोगों की सेवा के लिए घर न आने का फैसला करता है। यह होता है मानवता का धर्म। उसकी बात सुनकर माँ चुप हो जाती है। 'देवदूत' में हमारे समाज का असली चेहरा उभरा है। विदेशों में मैंने देखा है, जब कोई सरकारी आदेश जारी होता है, लोग उसका पालन करते हैं, हमारे देश में उसका लोग उल्लंघन करने में बहादुरी समझते हैं। राजनीतिक पार्टियाँ जनता को भड़काती हैं और विरोध में लग जाती हैं। लोग सही कहते हैं, हमारा देश भगवान भरोसे चलता है, वरना आबादी का बड़ा हिस्सा विरोध करने में ही लगा रहता है।

'सजा' अच्छी रचना बन पड़ी है और ईश्वर, अल्लाह के नाम पर दुनिया को बरगलाने वालों पर सशक्त व्यंग्य है। 'बोझा' में अकेले आदमी का दर्द मुखरित हुआ है। 'मैरिज सेरेमनी' में बूढ़े दम्पत्ति का तनहा दर्द छलक रहा है। अपने लोग फोन पर बात करते हैं और बाहरी लोग सेलिब्रेट कर रहे हैं। आँखों का भर आना स्वाभाविक ही है। 'उनका रोना' अत्यन्त मार्मिक कहानी है। उन सभी घरों की ऐसी ही भयावह दशा है जिनके घरों में मानसिक विकलांग या अर्ध–विकसित, मन्दबुद्धि बच्चे हैं। उनका जीना भी सबके लिए सरल नहीं है और किसी की मृत्यु दुखी करती ही है। दिल को छूने वाली लघुकथा है– 'स्थायी पता।' गिलहरी ने अपना आशियाना बना लिया है उनके लेटर–बॉक्स को। दो–तीन बार उसके आशियाने को उजाड़ चुके हैं। आज वह करुणापूर्ण निगाह से देख रही है, शायद कह रही है।

बच्चों को जन्म देकर कुछ ही दिनों में चली जाऊँगी। कथनी–करनी में भेद का उदाहरण है 'और कोई बात। उपाध्याय जी को महारत हासिल है ऐसे भेदों को उजागर करने में, शायद मशाल लेकर ढूँढ़ते फिरते हैं। उनकी पैनी निगाह से मानवीय विसंगतियाँ छूट नहीं पाती। कुल मिलाकर देखा जाय तो उनकी लघुकथाएँ हमारे समाज के विद्रूप चेहरे को दिखाने में सफल हैं। उन्हें पढ़ा जाता है और देश के बड़े लेखक, व्यंग्यकार के रूप में स्वीकारा जाता है।

पुस्तक–परख, लेखक–डॉ0 प्रदीप उपाध्याय, मूल्य–200 रू0, प्रकाशक–उक्कर्ष, मेरठ।

ग़ज़लें

विकास
गुलज़ार पोखर, मुंगेर (बिहार)
मो0–9934224359

कौन किससे जुदा हो गया
इश्क़ देखो ख़फा हो गया

डर यही है न पढ़ ले कोई
ख़त मेरा गुमशुदा हो गया

दर्द जाकर मिला दर्द से
ये नया माज़रा हो गया

है शज़र की ज़रूरत मुझे
धूप से सामना हो गया

चीख़ किसकी सुनाई पड़ी
क्या इधर कुछ बुरा हो गया

आइना आइना आइना
आइना रहनुमा हो गया

लोग ख़ामोश होने लगे
फिर वही फ़ैसला हो गया

न समझो कुछ भी ऐसा कर रहा हूँ
कि अपने क़द को छोटा कर रहा हूँ

उठेंगी उँगलियाँ मुझ पर कहीं भी
अधूरा काम पूरा कर रहा हूँ

चलूँगा साथ उसके कब तलक यूँ
नया इक़ और रस्ता कर रहा हूँ

बहुत मुश्किल है थोड़ा वक़्त लेगा
किसी पत्थर को शीशा कर रहा हूँ

बचा लो इस नदी की शाख़ यारो
मैं खुद को आज प्यासा कर रहा हूँ

अभी हैं सिरफ़िरे हालात मेरे
अभी चुपचाप सोया कर रहा हूँ

तुम्हें जाऊँगा लेकर महफ़िलों में
तुम्हारा नाम साझा कर रहा हूँ।

जाने किसको मलाल होता है
जब बुरा मेरा हाल होता है

दिल बराबर ही टूटकर रोया
इश्क़ में ये कमाल होता है

क्या तुम्हारी है आँख में आंसू
हाथ में बस रुमाल होता है

जब शज़र हो नहीं मुहब्बत का
धूप से भी सवाल होता है

बात होती है जब यूँ शीशे की
एक पत्थर बहाल होता है।

नदी के सामने कोइ खड़ाउ है
समुन्दर सिर झुकाकर देखता है

बदन पर धूप का साया न हो तो
सफ़र में फिर कहाँ आता मज़ा है

तुम्हें अब लौटकर आना पड़ेगा
किसी का ख़त जो तन्हा हो रहा है

अभी नाजुक बहुत है इश्क़ मेरा
ज़रा सी चोट से ही टूटता है

नज़र भी क़ैद है तन्हाइयों में
तुम्हारी शाम की कैसी अदा है

समीक्षा

सांस्कृतिक चेतना समकालीन आदिवासी उपन्यास

डॉ0 रश्मि मालगी
प्लाट नं0–1, सिद्धारूढ कॉलोनी,
शिवगिरि, धारवाड, कर्नाटक

हिन्दी साहित्य में कई विधाएँ हैं। उसमें से उपन्यास विधा महत्वपूर्ण विधाओं में से एक है। हिन्दी आधुनिक साहित्य में कई ऐसे उपन्यास हैं जो आदिवासी जनजातियों को शोषण, अन्याय, अत्याचारों पर लिखे गये हैं। आदिवासियों को मूल निवासी कहा है। आदिवासी शब्द दो शब्दों आदि और वासी से मिलकर बना हैं। आदिवासियों का स्थान जंगल, पहाडों में होता है। इस संदर्भ में रमणिका गुप्ता का यह कथन उल्लेखित है। वे कहती हैं – "विशिष्ट पर्यावरण में रहनेवाले, विशिष्ट भाषा बोलेनेवाले, विशिष्ट जीवन पद्धति तथा परंपराओं से सजे और सदियों से जंगलों–पहाडों में जीवनयापन करते हुए अपने धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्यों को संभालकर रखनेवाले मानव–समूह। भारत के प्रमुख आदिवासी समुदायों में सॅपाल, गोंड, मुंडा, भील, गरासिया, मीणा, अराव आदि हैं। आदिवासी जनजातियों की अपनी सामाजिक संरचना में भी बाकी गैर–आदिवासी समाजों से बहुत मित्र हैं जो लगभग सभी क्षेत्रों में एक खास तरह की बर्बर कठोरता लिए हुए हैं।" हिन्दी की सबसे लोकप्रिय विधा उपन्यास रही है। हिन्दी के आदिवासी केंद्रित उपन्यासों में आदिवासियों की जीवन वैचारिक एवं चिंतनात्मक परिलक्षित होता है। उपन्यासकारों ने आदिवासियों के सामाजिक, आर्थिक चिंतन के साथ उनके आर्थिक सांस्कृतिक चिंतन को भी वाणी दी हैं।

महान कथाकार संजीव ने 'जंगल जहां शुरू है' इस उपन्यास में थारू जनजाति का सामन्यजन है। इस उपन्यास में संजीव ने थारू जाति के जो आदिवासी हैं, उन पर डाकू द्वारा होनेवाले अन्याय, अत्याचार, शोषण का यथार्थ चित्रण किया है। उपन्यास के केंद्र में पश्चिम क्षेत्र का अरण्य है। जहां हत्या, बलात्कार, डकैती, अपहरण अपना अस्तित्व में वहां के जंगल के वनस्पतियों के अत्याचार की वजह से उन्हें किसी तरह से मानसिक व आर्थिक पीडा से जूझना पडता है। यह भी बताया है कि उपन्यास में थारू जनजाति अपनी समस्याओं को देवी देवताओं के माध्यम से सुलझाना चाहते हैं। विसराम बहु की बडी लड़की दुलारी को सांप काट लेने पर डॉक्टर के द्वारा उसका उपचार न कराकर ओझा को समर्पित कर दिया है।

आदिवासी जनजातियों की अपनी परंपरा, रीति–रिवाज होते हैं। आदिवासी लोग आज भी अंधविश्वास में जीते हैं। योगेन्द्रनाथ सिन्हा का 'वन के मन में' उपन्यास में इसका चित्रण हमें देखने को मिलता है। इसमें दो आदिवासियों के रीति–रिवाज का वर्णन किया गया है। जिन प्रमुख लक्षणों पर उनका निर्णय निर्भर करता हैं उनमें कुछ इस प्रकार हैं – "चील मुर्गी के चेंगना को उठा ले गई या नहीं ?अर्थ अब कुछ तय हो जाने के बाद ब्याह के पहले कोई और इसका काट नहीं, यदि दाएँ हुई तो निश्चित होते हुए भी उसका उपचार हैं, बाएँ तो संदेह है कि ऐसा होगा या नहीं। कुत्ते ने जमीन खोदी ?अर्थ – यदि खोदी तो किसी पक्ष का कोई मर जाएगा, विशेषकर जन्म होते ही बच्चा।" संथाल जाती के आदिवासियों के यथार्थ को परत–दर परत खोलता हुआ संजीव का 'धार' उपन्यास है। जिसमें संजीव ने भारत के विभिन्न क्षेत्रों में आदिवासी जाति का वर्णन किया है। वहाँ के क्षेत्र का वर्णन करते हुए संजीव ने लिखा है– "न दिन है न रात दोनों की दहलीज पर संथाल परगना का पूरा नंगा इलाका घायल गुर्राते सुअर की तरह पड़ा हैं। नंगी, आधी–नंगी पहाडियों में जहाँ–तहाँ खड़े साल, महूएँ, खजुर और ताड़ के पेड़, खेढे की झाडियाँ, बुलाई बंजर धरती, सूखती नदियाँ, सूखते हुए तालाब, भयंकर पोखड़ियाँ जहाँ–तहाँ सोये हुए मुर्दे से लोग।" आदिवासी जीवन संघर्षपूर्ण रहा है और न जाने कब तक रहेगा। आदिवासियों में कला की तरह मौखिक साहित्य का विस्तार भी बहुत बडा है। आदिवासियों के लोकगीतों, लोककथाओं में उनकी संस्कृति की झलक मिलती है। न जाने कब किसने कहाँ गा दिया और तब से अब तक यह सिलसिला चलता आ रहा है। आदिवासी अनपढ़ हैं। इसलिए इसका कोई लिखित साहित्य नहीं है, फिर भी परंपरा से चली आ रही संस्कृति को सहेजे हुए हैं। यह परंपरा अटूट है। डॉ0 श्याम सिंह राशी के अनुसार "किसी भी जाति का चारित्रिक विशेषता उसके गीत और प्रसन्नता के प्रति उसकी प्रतिक्रिया का मापदण्ड में होता है।" गाँव तथा देहातों में गाये जानेवाले जनसाधारण के वे गीत जो परंपरागत रूप से किन जनसमाज में प्रचलित हैं, उन्हें लोक गीत कहा जाता है। इन गीतों के शरा प्रकट होती हैं। डॉ0 विवेकी राय के अनुसार " लोकगीतों में गाँव के प्राणों का स्पंदन होता है तथा उनका समूचा अंतरवैभव इन गीतों के रूप में प्रस्फुटित होता है। परंपरा के रूप में गाये जाने वाले ये लोकगीत कभी–कभी उनके गायकों के व्यक्तित्व के साथ मिलकर एकाकार हो जाते हैं। गीतों के गाने का कोई समय नहीं होता। सुबह हो या शाम कभी भी गा सकते हैं।

विवाह के विभिन्न संदर्भ के अनुसार विविध लोकगीत गाये जाते हैं। जैसे "जहाँ खिले है रक्तपलाश में दुल्हन के विदाई के समय सब लोगों के चेहरों पर उदासी भाव छा जाती है। दुल्हन माई अरज करती है और ऊँची तान से गीत उठाता है जोगी –

"काहे इर देखवा बियहले रे माईख
देहरी भइले परदेश.....,
सावन में झुलवा झूलबो ऐ माई
भेज तू विदाई के सनेस ..... ।"

(इतनी दूर क्यों ब्याह दी जाती हैं बेटियाँ की ...?जन्म देहरी परदेश हो जाती है। सावन का झूला झूलना चाहती हैं। वह विदाई के लिए संदेश भिजवाने की अरज कर रही है माँ से ।)

लड़की शहरी हो या देहाती, विवाह के बाद विदाई की कल्पना ही उसे भिगो देती है। और मायका छूटते समय बहुत विलगित हो उठती है। 'पठार पर कोहरा' में रूदिया परभू एक्का से विवाह है।

प्रकृति प्रेमी आदिवासी प्रकृति के उपकारों को कभी नहीं भूलते। वे विभिन्न त्योहारों के अवसर पर उनकी पूजा अर्चना करना नहीं भूलते। आदिवासियों में प्रत्येक पर्व के समय पर गाने के लिए अलग–अलग गीत होते हैं। 'पठार पर कोहरा' में रूदिया के कंठ से 'सरहुल पर्व' के संदर्भ में गीत ज्यों ही हवा में बिखरता हैं, शब्द लवंगलता हो जाते हैं। रूदिया के मधुर कंठ से फुटते गीतों में सूर मिला रही हैं शेरू–

"खेया सेडीय हिये रे नाद नौर
खेडोने डोय हियो रे नाद नौर
मिरिम चाँदों चाँद रे नाद नौर
भर चाँदों चाँद रे ले उना।"

इसका अर्थ है–भौजी को बुलाओ। पतो हुओं को न्योता भेजो। सबको जुटाओ। बड़ी मुर्गी की बलि दो। टूटे घडे में हँड़िया भर–भर अर्घ्य दो, चाँद दो। आदिवासियों के प्रमुख देवताओं में से एक है 'बुरूबोंगा'। यही देवता वन–प्रदेश का मालिक होता है। आदिवासी इस सर्व शक्तिमान 'बुरूबोंगा' को विविध कर्मकांडों से याद करते हैं। इनका मानना है कि 'बुरूबोंगा' ही इन्हें आपत्तियों से बचाता है। खूँखार–हिंसक प्राणियों से रक्षा करता है।

आदिवासियों में रोपनी के समय उल्लास दिखाई देता है। सालभर की मेहनत को फलते–फूलते देखकर उनके मन में खुशी का कोई ठिकाना नहीं रहता। आदिवासियों के रोपनी के समय का चित्रण "पठार को कोहरा" में मिलता है। "इस बार जिसके पास दस हाथ भी जमीन है, बड़े प्रेम से जोती–बोयी गयी है। खेत हरे हैं। कोला भरा है। कलगी फोड़ चुके हैं। ज्वार, बाजरा और मकई के पौधे। स्त्रियों के लिए लगायी गयी पाट और सनई भी खूब बढ़े–फुले हैं इस साल। मुंडाओं की छाती ऊँची है। माथा चमक रहा है। ऊचाह लेती आशाएँ और हिलौरें लेता मन .....। मुंडा स्त्रियों के कंठ में भी कोयलें आ बसी हैं। खूब 'सौख' से रोपाया है धान। जिनके सिर से कर्जे उतर गये हैं उनका सारा धान इस साल अपना होगा। रोपानी गीतों के ज्वार से नहा उठा है गजली ठोरी .....

बिर तबु चब तन
ओते तबु पीड़ि तन
दारू बु रोवाया
गोड़ा पिड़ी रेबु रोवाया।"

,आदिवासी दिनभर मेहनत करने के बाद अपनी थकान, तनाव व दुविधाओं को भूलकर हँड़िया नृत्य व गीतों के सहारे मौज–मस्ती में रहने की कोशिश में रहते हैं। आदिवासियों के मनोरंजन का प्रमुख साधन है उनके नृत्य और गीत। ऐसे गीत गाने के लिए कोई विशेष समाज या स्थान नहीं होता है। "ग्लोबल गाँव के देवता' में मास्टर उनकी भौजी जब भी मूड में रहती तो खाना खिलाते समय देवर भाभी वाले गीत सुनाया करती है।

"काहे रे देवरा मन तोरा, कुम्हले,
काहे रे मन सूखी गेला रे,
भूखे रे देवरा मन तोरा कुम्हाले,
पियासे मन सूखी गेला रे।"

लोकगीतों का क्षेत्र बहुत ही व्यापक है। इसमें प्रकृति के साथ–साथ मानव मन की कल्पनाओं का ब्रहाण्ड भी समाया है। "मानव की शैशव लोरियों में झूलता व सोता है तो यौवन प्रेमोन्माद में प्रमत्त गीतों में विश्राम करता है। लोकगीत, लोक खींचनहार और प्रेमी हृदयों को प्रेम जल से सींचते हैं। 'बाजत अनहद ढोल' में जोबा और सुकेल जब उसे छोड़कर जा रहा होता है तब जोबा स्तब्ध खड़ी रहकर एकदम उसे निहारती रहती है।

'' नाले धाडकरे सीसारारे।
दोन आते चियो नालोम रागा।
निन् मिनान् मोर पियो नालन पियोज
कुँआरी मौन धियो डाले–डाले।"

'हे पपीहे, आंगन में शीशम का पेड़ है। उस पर फुदक–फुदक कर मत बोलना। जब तक काँरी है, तब तक पी–पी मत बोलना। बोली सुनने से मेरा काँरा न तिल–डोल करने लगता हैं, विह्वल होने लगता है।

इसी प्रकार 'जो इतिहास में नहीं है', में प्रेम गीत का उल्लेख मिलता है। आदिवासी युवतियाँ 'घोटुल' में नृत्य–गीत गाती हैं। लड़कियों के झुंड अपने प्रेमी की आस में प्यार के गीत गाती हैं।

चयनित उपन्यासों में प्रेम के साथ–साथ विरह के गीतों का उल्लेख मिलता है। कथानक के विविध संदर्भें में उपन्यासकारों ने विरह के गीतों का इस्तेमाल किया है। 'नंदू घटवार' अपने बचपन की साथी 'सत्यवती' से प्रेम करता है। पर वे परिस्थितिवश व समाज के नियम कानून से मजबूर हो जाते हैं। उधर सत्यवती की उसी के कुल के एक पुरुष के साथ शादी हो जाती है। और इधर नंदू अपना नदी में नाव खिंचने का पारंपरिक व्यवसाय को निभाता है। कभी वह अपनी प्रेमिका की याद में ऊँचे सुर में गाने लगता है।

"नदिया के पार गइले, रोजी जगावे रे,
पनिया में गल गरले भाटी के बलमुँआ।"

(रोजी रोटी कमाने नदी के पार गये मेरे प्रिययतम अब तक लौटे क्यों नहीं?पानी में गल तो नहीं गये) प्रेमिका के मन की पीडा नंदू घटवार के कलेजे से हूक बन कर उठाती है। भीग जाते हैं सुननेवालों के मन–प्राण।

"कहां बिलम गइले, जोगिनियाँ जादू कइले।
माछी–मेंढ़ा बन गइले, माटी के बलमुँआ।"

(कहाँ विलंब हो गया ?शाद किसी जोगिन–जादूगरनी ने मेरे

प्रियतम को वश में कर लिया। मेरे प्रियतम को मक्खी–मेंढा बनाकर लिया ..... ।)

प्रकृति से अटूट रिश्ता रखनेवाले आदिवासी गीतों के बहाने प्रकृति से एकरस हो जाते हैं। जैसे – "रमज़ानी बूढ़ा गायों को पानी पिलाने नदी में उतारा था। फाल्गुन की फुरफुराती हवा से फुरफुरा गया उसका मन .... । पोपले मुँह से कगुआ उठाया।

"आइले फागुन के बहार
पिया हो पियरिया रंगाई द
मन में फूटेलना अनार
कुसुमी रंग चुनरी पहिराई द।"

(फागुन की बहार आयी है। मेरे प्रियतम, मेरे वस्त्र पीले रंग में रंगवा दो मन में अनादर फूट रहे हैं। मुझे टेसू के रंग में रंगी चुनरी पहना दो।)

इसी प्रकार प्रकृति से संबन्धित गीतों का 'जो इतिहास में नहीं हैं' में सुंदर चित्रण मिलता है। चढते आषाढ़ की पहली बौछार पाते ही घुसर पहाड़ पर हरियाली छा जाती है। नयी कोंपलें, नये अंकुर, नयी घास परन्तु जब तक अपनी ढ़िया पूजा न होती, कोई संताल नयी घास नहीं काटता। घासफूस को हाथ भी नहीं लगाता। .....ढ़ोल की धमरू से बौराया संताल मन आषाढ में भी पर्व का वासंती गीत गा रहा था।

"धरती तांग तिस काबा
दत्ते धरकी ओदा तिस ओवा
बादुर देन बादुर
बादुर अतान होतांम लगाई।"

(अर्थात जब कहती है धरती, प्यास हरना, तृप्त करना। तभी धरा पर बरसता है जल। बरसो माटी पर ओ बौछार। ब्यास हरो ओ बौछार।।

अतः कह सकते हैं कि प्रत्येक आदिवासी समाज में अपने–अपने अलग गीत होनेवाले परंतु उनकी मूल भावना एक सी होती है। ये अलग होते हुए भी एक जैसे लगते हैं इसमें सिर्फ भाषा का फर्क होता है। लोकगीत आदिवासियों के उम्र भर के साथी होते हैं। जन्म और मृत्यु तक गीत इनके सा लगते हैं, मरनोंपरांत भी गीतों के साथ दफनाया जाता है। अगली पीढ़ी तक अपने आप पहुँच जाते हैं।

युवा कथाकार वीरेंद्र जैन का सन् 1994 ई. में प्रकाशित 'पार' उपन्यास बुंदेलखण्ड आँचल के आदिवासी जीवन का दस्तावेज है। यह उपन्यास दो गाँव जीरोन और कडॅई के माध्यम से खण्डित हो रही जीवन पद्धति और अस्मिता बचाए रखने की लड़ाई में गाँव के लोगों की भागीदारी की कहानी है।

राकेश कुमार का 'पाठर पर कोहरा' झारखण्ड के आदिवासी जनजातियों की भाषा, रहन–सहन, संस्कृति का चित्रण करता है। साथ ही आदिवासी जाति की शिक्षित युवती का आत्मसंघर्ष भी व्यक्त करता है। शंकरलाल मीन का उपन्यास 'सपनों वाली वह दुबली लड़की' में एक आदिवासी पढ़े लिखे संवेदनशील युवक की कहानी है। इसमें उसके सपनों की वह लडकी है जो उसे जिंदगी के हर मोड़ पर मिलकर कभी दिशा देती है, तो कभी उलझा देती है। इस तरह मुँए ने हिंदी के प्रमुख उपन्यासों में आदिवासी उपन्यास के अंतर्गत कुल बीस से अधिक आदिवासी जनजातियों की जीवन रहन–सहन, आचार–विचार और विमर्शात्मक दृष्टि प्रस्तुत किया है।

मैत्रेयी पुष्पाजी का 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास स्त्री जाति की पीड़ा एवं वेदना को उद्धृत करता है। धोखे से जंगलिया की हत्या कर कदमबाई को अपनी वासना का शिकार बनाता है।'' दुर्जन कुछ रूपए के लिए अल्मा को नारियों का व्यापारी सूरजभान को बेच देता है। अल्मा को उसके सौतेला भाई मंत्री को खुश करने के लिए भेज देता है। अल्मा की मजबूरी के कारण वह अपना शरीर मंत्री को समर्पित कर देती है। इस तरह से आदिवासी स्त्रियों की त्रासदी, पीड़ा, संघर्ष व अपमान को उपन्यासों में उघाड़ा गया है। 'कब तक पुकारुँ' वह रांगेय राघव का करनट आदिवासी जीवन पर आधारित है। समाज के मुख्य प्रवाह से कटी हुई करनट जाति विषम परिस्थिति में गुजर–बसर करती है। संघर्ष, अपमान, घृणा, तिरस्कार, मजबूरी, अभावपूर्ण जीवन वासनागंध मानसिकता का पशुतुल्य जबरन एवं मजबूरन वेश्या व्यवसाय, बलात्कार आदि करना आदिवासी स्त्रियों के जीवन के नट जाति की विशेषता के संबंध में हैं।

रणेन्द्र कथाकार ने अपने उपन्यास 'ग्लोबल गाँव के देवता' में एक ऐसे समाज को केन्द्रबिन्दु बनाया है, जो आज का सबसे बडा शोषित समाज है, वह है आदिवासी समाज। विस्थापन से किसी स्वरूप का भी आमूलाग्र परिवर्तन है। आदिवासी संस्कृति को बचाने एवं अपनी अस्मिता की रक्षा हेतु 'ग्लोबल गाँव के देवता' में आदिवासियों के प्रति सचेत होना पडा। आदिवासियों का प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित करने का प्रयास करते दिखते हैं – ''अखड़ा हर गाँव के बीच या किनारे तक सार्वजतिक स्थल होता, जहाँ गुरूवार के दिन गाँव के सारे बुजुर्ग समझदार, सयाने बैठते और गाँव, घर, समाज की समस्या पर बतियाते। उसी आखाड़ा में पर्व–त्योहार ससुराल सोहराय पर रात भर नाचता। सखुआ और पलाश नाचता, कनेर और आमलतास नाचता। नदी–झरना पहाड़ नाचते। एक साथ पूरी पूरी रात नाचती।'' रणेन्द्र ने आदिवासियों का प्रकृति के साथ स्वाभाविक तादात्म्य स्थापित किया है।

आज के अनेक जनजातियों में एक समय में आदिवासी लोग थे। द्राविड़ कुछ जातियों में अभी भी अपनी संस्कृति की ओर से ही अंकित हो जाती हैं। जनपद साहित्य में सृष्टि–विश्लेषण के समय में आमने–सामने के विकास में मानसिक और सृजनशील प्रवृत्ति मिलता है। वैदिक मूल कथाओं में भी इन गुणों को रखा देखा है। आदिवासियों का अपना धर्म है, ये लोग प्रकृति पूजक होते हैं और पहाड़ नदियों एवं सूर्य की आराधना करते हैं। साहित्य में हिंदूकरण बहुत तेजी से चला है।

समीक्षा

यथार्थवादी उपन्यास : फाँसी बाग़

गोविंद सेन
मनावर, धार, मध्य प्रदेश–46
मो0–9893010439

बहुमुखी प्रतिभा के धनी नरेंद्र नागदेव वरिष्ठ कथाकार –उपन्यासकार और चित्रकार का नीवनतम पाँचवा उपन्यास है। अब तक उनके खाते में नौ कहानी संग्रह और चार उपन्यास दर्ज हैं। यथार्थ को प्रस्तुत करने का नरेंद्र जी का एक अलग ढंग है। उनके पास एक अनूठी शैली है। फंतासी के जरिए कथा को कहने का उनके पास जबर्दस्त हुनर है। बिंबों, प्रतीकों और रूपकों का प्रयोग कर वे कथा को चमकदार, सार्थक, प्रभावी और सघन बना देते हैं। सामंतवादी व्यवस्था के शिकार पात्रों की लाचार मानसिकता, उनकी बेचारगी, उनके अपराध भाव, उनकी जिजीविषा को प्राचीन मिथकों और वैश्विक संदर्भों से जोड़कर चित्रित करने में नरेद्र जी सिद्धहस्त हैं। सामंतवादी पात्रों के क्रूर, षडयंत्रकारी, झूठे दर्प, विषाक्त मनोभावों और उनके कुत्सित क्रियाकलापों को भी वे उसी शिद्दत से प्रतीकात्मक रूप में बखूबी दर्ज करते हैं। छोटे–छोटे वाक्यों की सघन शृंखला के जरिए नरेंद्र जी सामंतवादी ढांचे के अन्तर्गत पनपने वाली खूंखार प्रवृत्तियों और स्थितियों को मूर्त कर देते हैं।

प्रस्तुत उपन्यास अन्याय के प्रतिरोध में उठी सबसे कमजोर आवाज को बुलंद करता है। यह उपन्यास तीन खंडों में विभक्त है। 'दिया तो आकाश का टुकड़ा', 'तो फिर पूरा आकाश क्यों नहीं,?' और 'फाँसी बाग'। पहले खंड से उपन्यास प्रारम्भ होता है, दूसरे खंड में उसका विकास और अंतिम खंड में चरमोत्कर्ष पर पहुँच कर समाप्त। लेकिन समापन कहाँ?शोषण का यह सिलसिला तो आज भी बदस्तूर जारी है। उपन्यास में चित्रित गाँव महाभारत के जमाने का है। गुरू द्रोणाचार्य भी यहीं रहते थे और ऊपर हवेली वालों को तीर चलाना सिखाते थे। एकलव्य भी वहीं रहता था जिसने गुरू दक्षिणा में गुरू द्रोणाचार्य को अपना अंगूठा काट कर दिया था। गाँव के मास्टर जी विनय नारायण कहते हैं कि एकलव्य ने अपना अंगूठा देकर बहुत नुकसान कर दिया।

गाँव में सबसे ऊंचाई वाली जगह पर ठाकुर की शानदार हवेली है। हवेली से कोई पचास सीढ़ियाँ ढ़लान पर उतरकर गाँव जाती है। गाँव बहुत छोटा नहीं है, वहाँ एक हायर सेकेंड्री स्कूल और पुराना सिनेमाघर भी है। गाँव से और आगे नीचे तलछट में पंद्रह–बीस घरों की फूँस की छतों वाली पुरानी और जर्जर बस्ती या टोला है। गरीब–गुरबों दलितों का टोला। गाँव में ठाकुर की समानान्तर सरकार चलती थी। हवेली का अपना आकाश था। उस आकाश पर केवल ठाकुर की ही बड़ी पतंग सबसे ऊपर उड़ती थी। टोले की कोई भी पतंग उसके आसपास भी नहीं आ सकती थी। टोले को आकाश का एक टुकड़ा दे दिया गया था कि वे पतंगे अपनी हद में ही रहे–अपने छोटे–से आकाश तक सीमित। पर टोले की एक पतंग ने ठाकुर की पतंग को काटने की हिमाकत कर ही दी। ठाकुर की बेइज्जती पूरे गाँव की बेइज्जती थी। इस हिमाकत का जो नतीजा होता, वही उपन्यास का वर्ण्यविषय है।

ठाकुर की हवेली सत्ता का केंद्र है। सारे आदेश हवेली से ही प्रसारित होते हैं। मुंशी, चार दबंगों की चौकड़ी और उनका शेर हवेली की सत्ता को कायम रखने में किसी भी हद तक जा सकते हैं। हवेली में ठाकुर के बेटे छोटे ठाकुर भी हैं। छोटे ठाकुर हर साल परीक्षा में अव्वल आते हैं। ठाकुर को यह कतई मंजूर नहीं कि छोटे ठाकुर के अलावा कोई और परीक्षा में फस्ट आए। यदि ऐसा हुआ तो यह हवेली की तौहीन होगी और तौहीन करने वाले को इसकी माकूल सजा हवेली देगी।

निचले टोले में रहने वाला मातादीन घर पर लिफाफे बनाकर उन्हें दफ्तरों और स्कूलों में बेचने का काम करता है। एक दिन वह लिफाफे बेचने के लिए गाँव से पचास किलोमीटर दूर शहर जैतपुर के गर्ल्स हाई स्कूल जाता है। वहाँ फस्ट आने वाली लड़कियों को सम्मानित किया जा रहा था। उस समारोह को देखकर उसके मन में भी इच्छा जाग्रत हुई कि उसकी बेटी भी फस्ट आने की उसमें पूरी योग्यता थी। अब यह इच्छा उसका सपना बन गई। इस सपने ने उसे बेचैन कर दिया। पर यह तो असंभव था। उसकी बेटी फस्ट कैसे आ सकती है, वहाँ तो छोटे ठाकुर ही फस्ट आते रहे हैं। यदि उसकी बेटी फस्ट आ गई तो आफत आ जाएगी। यह हवेली की शान के खिलाफत होगा। हवेली उसे इसका दंड जरूर देगी। सोचकर मातादीन दहशत से काँप जाता है पर इच्छा दबा भी नही पा रहा था।

मातादीन अपनी इस समस्या का हल तलाशने के लिए मास्टर विनय नारायण के पास गया। वह उसे सलाह देता है कि यह ठीक है कि तुम्हारी बेटी पहले नंबर पर आए पर यह सहज नहीं है। इसके लिए सबसे पहले ठाकुर, दबंग चौकड़ी और फिर खुद छोटे ठाकुर से इजाजत लेनी होगी। मातादीन हिम्मत बटोर कर सबसे पहले ठाकुर के पास जाता है। मुंशी मातादीन का निवेदन ठाकुर के सामने रखता हैं कि इसकी बेटी को इस वर्ष ग्यारहवीं कक्षा में फस्ट आने की इजाजत दी जाए। ठाकुर से उसे इजाजत नहीं मिलती। इससे पहले कि ठाकुर उसकी इस धृष्टता की कोई सजा मुकर्रर करता, मुंशी उसे हाथ पकड़ कर बाहर का रास्ता दिखा देता है। वही निवेदन मातादीन चौकड़ी से करता है। चौकड़ी उसकी बात सुनकर हिंसक हो उठती है और उनका शेर भी उसे हिंसक निगाहों से ताकने लगता है। वहाँ से उसे बचकर निकलना पड़ता है। आखिर में मातादीन छोटे ठाकुर से इजाजत मांगने जाता है। सुखद आश्चर्य था कि वह पोजीशन कोई छीन नहीं सकता। मातादीन की लड़की फस्ट नही आ सकती।

लेकिन रिजल्ट अप्रत्याशित था। मातादीन की बेटी फस्ट आ जाती है और छोटे ठाकुर दूसरे स्थान पर। वह फस्ट में दो नंबरों से चूक गया था। यह हवेली की शान और गरिमा के बिलकुल खिलाफ था।

एक दो कौड़ी के निचले टोले की लड़की ने गाँव की नाक काट दी थी। बड़े ठाकुर की नाक ही गाँव का नाक था। छोटे ठाकुर को लड़की को फस्ट आने की इजाजत देने की दरियादिली के लिए घुड़का गया, पर इसके लिए उसे दोषी नहीं माना गया। दोष था मातादीन का। नाराज बड़े ठाकुर और चौकड़ी ने मिलकर मातादीन को बुलाकर उसकी सजा सुना दी। जिस स्कूल में उसकी लड़की पढ़ती थी उसी स्कूल में उसे दो महीने तक झाड़ू–पौछा का काम करना था। यह सजा पूरी होने के बाद स्कूल से केश चोरी का आरोप लगाकर सरे बाजार घुमाया जाना था।

मातादीन को दो महीने तक स्कूल में झाड़ू–पौछा लगाना पड़ा। बाद में बची हुई सजा के तौर पर सुनियोजित ढ़ंग से उस पर केशर चोरी का इल्जाम लगाया गया। 'मैं चोर हूँ।' की तख्ती उसके गले में लटका कर चौकड़ी के नेतृत्व में पूरे गाँव में घुमाया गया। शेर भी इस जुलूस में उछल–कूद करता रहा। निर्धारित समाज–व्यवस्था में दखल देने के लिए मातादीन को ठाकुर, दबंग चौकड़ी और शेर ने सबक सिखा दिया था। उसे अपनी औकात दिखा दी गई थी, ताकि फिर वह सिर उठाने की जुर्रत न कर सके।

लड़की स्वाभिमानी थी। मातादीन को दी गई सजा के बावजूद उसने अगली कक्षा में फस्ट आने का निर्णय ले लिया। वह उड़ने के लिए पूरा आकाश चाहने लगी थी। विपरीत परिस्थितियों के बावजूद वह पढ़ाई में जी–जान से जुट गई। मातादीन उसके इस निर्णय से डर गया। वह अपनी बेटी के लिए चिंतित हो उठा। पता नहीं अब फस्ट आने की सजा ठाकुर और चौकड़ी क्या देती है। सजा जो भी हो पर वह मृत्युदंड से कम न होगी। मातादीन अब की बार लड़की फस्ट न आए, इसके लिए जी–तोड़ कोशिश करने लगा। जब उसे पता लगता है कि उसकी बेटी के पेपर बहुत अच्छे गए हैं और छोटे ठाकुर का गणित का पेपर बिगड़ गया है तो वह अपनी बेटी के नंबर कम करवाने के लिए इधर–उधर भटकता है पर सफल नहीं हो पाता। इस बीच छोटे ठाकुर का लड़की के प्रति एक सॉफ्ट कार्नर पैदा हो जाता है। वह भी कोशिश करता है लड़की इस बार फस्ट न आए अन्यथा उसका जीवन बर्बाद हो जाएगा। वह लड़की की सलामती चाहने लगा था। ठाकुर, चौकड़ी और शेर ने भी अपने समस्त संसाधनों और प्रभावों का इस्तेमाल करते हुए यह पूरजोर कोशिश की कि लड़की फस्ट न आ सके ताकि उनकी नाक सलामत रहे। उनका प्रभाव और सत्ता कायम रहे। इन सभी कोशिशों का विस्तृत और रोचक चित्रण पाठक को लेखकीय प्रतिभा का कायल कर देता है।

लेकिन सबकी कोशिशों के बावजूद लड़की आखिर फस्ट आ ही जाती है। शिक्षा मंत्री द्वारा उसे सम्मानित भी किया जाता है। लड़की का फस्ट आना और सम्मानित होना ठाकुर, उसकी चौकड़ी और शेर पर नागवार गुजरता है। वे अपने खूंखार मंसूबों के तहत एक साजिश रचते हैं। छोटे ठाकुर को जैतपुरा भेज दिया जाता है। अमराई में मातादीन और लड़की को सम्मानित करने के लिए बुलाया जाता है। गाँव भर के उच्चके वहाँ इकट्ठे होकर शराब पीते रहे। फूहड़ कहकहे लगाते रहे। भद्दे मज़ाक करते रहे। उनके भीतर का शैतान संभाले नहीं संभल रहा था। अगली भोर में अमराई के एक बड़े पेड़ पर मातादीन और लड़की की लाशें झूल रही थीं। मातादीन का चिथड़ों में लिपटा शरीर घावों से भरा था। लड़की के शरीर पर घावों के साथ जगह–जगह गहरी खरोंचे थीं। वह पूरी तरह निर्वस्त्र थी और उसकी जांघो के बीच खून जमा था।

उपन्यास पढ़कर पाठक विचलित हुए बिना नहीं रह सकता। वह उस सदियों की ठहरी हुई, सामाजिक विषमता को बढ़ावा देती, अत्याचारी सोच के पोषक, वर्णवादी और शोषण आधारित समाज–व्यवस्था से पूरी तरह वाकिफ हो जाता है। उच्च वर्ग की सामंती विषाक्त मानसिकता शोषित –वंचित वर्ग पर कैसे–कैसे जुल्म ढ़ाती है और किस तरह उनके जीवन को नारकीय बना देती है, यह सब पढ़कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। लोकतांत्रिक मूल्यों के खिलाफ खड़ी जातिवादी और सामंतवादी व्यवस्था झूठे श्रेष्ठता बोध–अभिमान का पोषण कर समानता और मानवता को सिरे से खारिज करती रही है। अन्याय के प्रतिरोध में उठी हर कमजोर आवाज को क्रूरता से दबा दिया जाता है। लेकिन इस दुनिया में वही लोग सबसे सुंदर होते हैं जो अन्याय के खिलाफ खड़े होते हैं और बिना लड़े हार नहीं मानते। कवयित्री एलिज़ाबेथ कुबलर रोस अपनी कविता में यही कहती हैं जिसे नरेंद्र जी ने उपन्यास के तीसरे खंड के शीर्ष पर उद्धृत किया है। यह कम साहस की बात नहीं है कि निचले टोले की वंचित–दलित वर्ग की सत्रह साल की एक अपमानित–अभावग्रस्त लड़की अंत तक झुकी नहीं। वह अपने स्तर पर प्रतिकार करती रही जबकि उसे इसका भयावह परिणाम का पता था। उपन्यास में ठाकुर, चौकड़ी, शेर, मुंशी, छोटे ठाकुर, विनय नारायण, मातादीन, लड़की माली, दारोगा आदि सभी पात्र प्रतीक बनकर बखूबी उभरे हैं। हर पात्र अपने वर्ग का प्रतिनिधि है। सभी पात्रों के भाव–विचार, चिंता, दर्प, बर्बरता, निरीहता, जिजीविषा, दुख–तकलीफ़ और क्रियाकलाप उनकी समाजिक हैसियत के अनुरूप ही चित्रित हुए हैं। सामाजिक संरचना, के अनुरूप ही गाँव की बसाहट भी है जिसमें सबसे ऊपर ठाकुर की हवेली है और सबसे नीचे तलछट में वंचित वर्ग का दलित टोला। उपन्यास महाराष्ट्र के खेरलांजी नामक गाँव की दलित महिला और उसकी किशोरी बेटी के साथ हुई ज्यादती से प्रेरित जरूर है पर उस घटना का महज प्रस्तुतीकरण कतई नहीं है। लेखक ने उस घटना का अद्भुत रचनात्मक रूपान्तरण किया है। उपन्यास का आवरण चित्र स्वयं नरेंन्द्र जी की तूलिका से सृजित है जो कथा के अनुरूप सटीक और अर्थवान है। किताब की छपाई–सफाई उत्तम है। उपन्यास अत्यंत रचनात्मक और पठनीय है।

उपन्यास–फाँसी बाग़, लेखक नरेन्द्र नागदेव, प्रकाशक–किताबघर, नई दिल्ली–2

समीक्षा

समालोचना का राज खोजती किताब
गहरे पानी पैठ

रमेश खत्री
53/17, प्रतापनगर, जयपुर–22
मो0–94414373188

बेर्टोल्ट ब्रेस्ट ने थीसिस फॉर प्रोलेतारियन लिटरेचर में लिखा था, " लेखन के जरिये लड़ो! दिखाओ कि तुम लड़ रहे हो। ऊर्जस्वी यथार्थवाद! यथार्थ तुम्हारे पक्ष में है, तुम भी यथार्थ के पक्ष में खड़े हो! जीवन को बोलने दो! इसकी अवहेलना मत करो! यह जानो कि बुर्जुआ वर्ग इसे बोलने नहीं देता! लेकिन तुम्हें इज़ाज़त है, तुम्हें इसे बोलने देना चाहिए। चुनो उन जगहों को जहाँ यथार्थ को झूठ से, ताकत से, चमक–दमक से छुपाया जा रहा है। अन्तर्विरोधों से उभारो!...

प्रकाश परिमल हमारे समय के ऐसे कला मनीषियों में हैं जो सृजन को इसके मूल उत्सों की एकान्विती में देखते रहे हैं और रचते रहे हैं। इसलिए वे साहित्य समीक्षायण (समीक्षा को वे यही नाम देते हैं) को साहित्य का महत्वपूर्ण अंग मानते हैं। मोनिका प्रकाशन, जयपुर से आई उनकी ताजी किताब "गहरे पानी पैठ" आयी है इसमें उन्होंने समालोचना की नई दृष्टि से पाठकों को परिचित कराने का प्रयास किया है।

यह अलग बात है कि हिन्दी के महत्वपूर्ण रचनाकार समय–समय पर अपनी रचनाधर्मिता से पाठकों को चौंकाते रहे हैं। अभी वो "गहरे पानी पैठ" के साथ पुनः साहित्य के फलक पर उपस्थित हुए हैं और इसके माध्यम से साहित्य में चली आ रही उस धारणा का खण्डन करते नजर आते हैं जिसमें यह कहा जाता है कि 'वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान' प्रकाश जी की मान्यता है कि यह धारणा महर्षि वाल्मीकि को आदि कवि मान लेने के कारण बनी है। यह तो सही है कि महर्षि वाल्मीकि द्वारा रामायण काव्य की रचना मिथुनरत क्रोंच के वध के प्रसंग में उद्वेलित हो जाने के फलस्वरूप हुई किन्तु वाल्मीकि से पूर्व की वैदिक कविता के अध्ययन से यह धारणा पुष्ट नहीं होती कि कविता का आदि स्रोत वियोग या करुणा है। परिमल का मानना है कि विश्व के सभी आदिम समुदायों के भी आदि काव्यों का स्रोत विस्मय और आस्था का मिला–जुला भाव ही रहा है।

समीक्ष्यकृति की विवेचना में हम पाते हैं कि इसके सोलह अध्यायों में भारतीय समालोचना प्रद्धति की पड़ताल करने के लिए विभिन्न संदर्भों की भी पड़ताल करने का प्रयास किया गया है। जिसमें प्रमुखता है 'काव्य भाषा और आधुनिक संवेदन', वैज्ञानिक रहस्यवाद का आदिकाव्य मिथक उषा सूक्त', 'कवि अनुहरतिच्छाया', 'कविता मनुष्य की श्रेष्ठतम उपलब्धि है', 'काल और रचना ', 'विश्व कविता जो दस्तक दे रही है', 'कविता की कसौटी', 'आधुनिक हिन्दी समालोचना का संकट', और 'आलोचन की स्वयत्तता'। इन अध्यायों में प्रकाश परिमल ने भारतीय समालोचला की गहन पड़ताल करने की कोशिश की है।

इसी मन्तव्य के अनुरूप ही प्रकाश जी"....उषा–सूक्त ऋग्वेद का सबसे अधिक काव्यात्मक सूक्त है। इसे हम विश्व का सबसे पहला काव्यात्मक आलेख भी कह दें तो आश्चर्य की बात नहीं। विश्व के इस प्रथम काव्यलेख के अध्ययन से यह लोक प्रचलित धारणा खण्डित होती है कि कविता की उत्पत्ति वियोग के भाव से हुई है।"

वो इससे भी आगे यह भी कहते हैं कि 'कविता की उत्पत्ति के विषय में यह सत्य अभी उद्घाटित होना शेष है कि इसके प्रादुर्भाव का कारण मनुष्य है या कोई मानवेतर अवस्था ?यदि मनुष्य है तब तो उसकी मूल अवस्था के विषय में विश्लेषण या व्याख्या करना मुश्किल न होगा। परन्तु यदि सृष्टि उत्पत्ति का कोई मानवेतर कारण हुआ तो उसका विनिश्चित किन्ही खास पहचाने जाने योग्य बिन्दुओं पर किया जाना संभव नहीं होगा।

भारतीय समालोचना पद्धति की व्याख्या करते हुए लेखक पाते हैं कि 'जीवन के गहरे अर्थों का जितना प्रकाश हमारे मन में होगा, उतनी ही कविता के लालित्य की सम्भावनाएं निरन्तर बढ़ती जायेगी। कविता का यह लालित्य जीवन के ही मौलिक अर्थ का उद्घाटन करेगा इसलिए जो लोग कविता की इन दूरगामी संभावनाओं को देख नहीं पाते, वे अनिवार्यतः जीवन की धारा के विरोधी रहेंगे।' निश्चित तौर पर उनका मानना है कि भाषा उस समय अत्यन्त नाजुक अवस्था में होती है जब उसे सांस्कृतिक रूपान्तर के नये दौर से गुजरना पड़ता है अथवा किसी नए साँचे में ढलना होता हैं। हिन्दी में नए काव्य की भाषा की भी करीब–करीब वैसी ही स्थिति है। 'कविता की चर्चा करते हुए उन्होंने पाया है कि 'शब्द और अर्थ की सर्वश्रेष्ठ कलात्मक आवृत्ति के रूप में कविता हजारों वर्षों से स्मरणीय रही है, उसी की गूंज एक युग से दूसरे युग तक कायम रही है, और आज भी उसमें याद रखने योग्य या स्मृतियों में संजोये रखने योग्य कुछ तो है जो उसकी विशेषता का द्योतक है।"

समीक्ष्य कृति की विवेचना में हम पाते हैं कि 'व्यक्ति और समाज के आत्मन्वेषण का सबसे प्रबल माध्यम भाषा है और निश्चिय ही भाषा अपने आदि संस्करण में शेष अभिव्यक्ति की तत्कालीन गूँगी विधाओं से अधिक सुखद मानव समाज के लिए रही होगी। बाहुल्य में बिखरे अथवा मानवीय मूक चेतना को घेरते हुए बाह्यांतर प्रभाव पता नहीं भाषा–हीनता की अवस्था में कितनी कठिनाईयों का कारण रहे होंगे।' इससे भी आगे जाकर लेखक इस बात की पृष्टि करते हुए दिखाई देते हैं कि 'भाषा के वाहक शब्द ने सर्वप्रथम मनुष्य को सम्प्रेषण की इस आदिम अवस्था में वस्तु के प्रभाव को सर्वाधिक व्यापक और संश्लिष्टात्मक ढंग से आत्मसात किया था लेकिन शब्द का संदर्भ हर आदमी के लिए वस्तु के वैयक्तिक अनुभवों की ही पुष्टि करता रहा हो, शब्द के माध्यम से सामान्य और

निर्विवाद रूप से वस्तु को यथावत समझने में सुविधा रही होगी। इस प्रकार शब्द मानवीय विकास की एक महत्वपूर्ण अवस्था रही है।'

निश्चिततौर पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वस्तु को सीमित अर्थों में जानने वाली अवस्था की ही कालान्तर में हमारी भाषा की विवषता रह गई है। वस्तु और उससे प्राप्त अनुभवों के बीच विवषता जान सकी, हाँ दर्शन और विज्ञान के बाद उस विवषता के अंधकार को चीरने का प्रयत्न इसलिए किया कि इनका तो अस्तित्व ही अनुभवों के विस्तार पर निर्भर है।

प्रकाश परिमल ने इस किताब में अधिकांश संदर्भों की पड़ताल की है जिसमें वो पाते है, 'गिल्गमेश वह नायक है, जिसने अपने पराक्रम से देवता और दानव दोनों के ही विश्वों को पदाक्रान्त कर रखा है, परन्तु उस महाबली को भी मृत्यु ने एकदम असहाय और निरीह बना दिया है। उसके सामने घटा अपने परम प्रिय एकेन्दु की मौत का प्रसंग, जीवन की डोर को काटकर यह बता रहा है कि मनुष्य चाहे कितना ही बलवान क्यों न हो जाये, मृत्यु की अटल संभावना के आगे वह असमर्थ ही है। फिर भी हार मान लेना 'गिल्गमेष' के स्वभाव में नही। वह एकेन्दु की जिन्दगी लौटा लाने के लिए अमरत्व का पता लगाने निकल पड़ता है।'

अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण समीक्ष्य पुस्तक का भविष्य–वर्तमान की आपाधापी के बीच समय के सत्य खंगालने वालों को सदा ही अपनी ओर आकृष्ट करेगा और वो इसको अपने अध्ययन कक्ष में स्थान जरूर देंगे।

पुस्तक का नाम–गहरे पानी पैठ/लेखक–प्रकाश परिमल/मोनिका प्रकाशन, जयपुर

ग़ज़लें

दिनेश तपन
भागलपुर
मो. 9431090390

ये जो किस्सा है हुक्मरानी का
सारा लफ़्डा है छेडखानी का

उसने गुरबत को मात दे दी है
जिसका धंधा है सोने चानी का

खिलके खुशबू बिखेरता हर शब
गुल वो होता है रात रानी का

इक मुहब्बत न निभ सकी मुझसे
दौर भी जब था नौजवानी का

साथ आए भी किस तरह दुनिया
मोल समझा न जिन्दगानी का

मेरी धड़कन में गाँव बसता है
शौक अब भी है बागवानी का

राम जाने कबीर कैसा था
जिसने रक्खा हिसाब पानी का

उससे निसबत न ऐ 'तपन' रखना
जिसका लहजा है बदगुआनी का

ख़ैर ओ बाकत की आ हुआ माँगें
दर है माता का माँ भवानी का

बेकारी इश्क़ की जाती नहीं है
अब मुहब्बत दिल को बहलाती नहीं है

कह दो उनसे हमने उल्फ़त छोड़ दी है
राश हमको जो कभी आती नहीं है

कौन कहता है वो हम पर आशना है
जो इशारे तक समझ पाती नहीं है

इस वबा के दौर में रंजिश न देना
ठेस उल्फ़त में सही जाती नहीं है

इम्तहां लेती है उल्फ़त जब कभी भी
ज़ख़्म ही देती है सहलाती नहीं है

जुल्म ढ़ाने की रिवायत का करें क्या
ज्यादती कोई हमें आती नहीं है

जिस कदर तारी है दहशत आदमी पर
मौत भी अब दिल को दहलाती नहीं है

क्या पता थम जाए कब सांसों का सरगम
पुरसुकूं अब नींद भी आती नहीं है

आ "तपन" कुछ बात कर तन्हाइयों से
जब तलक ये शाम गहराती नहीं है

चिढ़ना क्या नाहक अदना सी गारी से
आगिन लग सकती है इक चिन्गारी से

फिर भी बात ज़हन में लाना है लाजिम
इतना गर मग़रूर है वो खुद्दारी से

धूर्त लुटेरे टुच्चे धोखेबाज हैं जो
तौबा कर ऐसों की रिश्तेदारी से

मुल्क बदर काला पानी या फाँसी हो
कर न कभी समझौता भ्रष्टाचारी से

शून्य बनाकर जो अक्सर लौटा करता
क्या उम्मीद करें हम उसकी पारी से

पहले अर्थ समझ उनकी मंशाओं के
आप निबटना फिर उनकी गद्दारी से

देश विरोधी दंगाई रेपिस्टों का
कत्ल किया जाए नफरत की आरी से

मोल चुकाते हैं सब हुब्बलवतनी का
औरत मर्द 'तपन' हम बारी बारी से।

समीक्षा

साहित्य और मानव-मूल्य

दयानन्द जायसवाल
मो0–9931240303

डॉ0 पशुपतिनाथ उपाध्याय, बलिया (उत्तर प्रदेश) द्वारा रचित बारह अध्याय में यह निबंध संग्रह साहित्य में मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा का प्रत्यक्ष दस्तावेज है। इन्होंने साहित्य में मूल्य शब्द का प्रयोग वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक स्तरों का सम्पूर्ण मानव व्यवहार के मानदंड के रूप साहित्य में एक ओर प्रतिबिम्बित किया है, तो दूसरी ओर विश्वबन्धुत्व का सशक्त सन्देशवाहक के रूप में लक्षित किया है। मानव मूल्य की दृष्टि से हिन्दी साहित्य समृद्ध और सम्पुष्ट है। आदिकालीन हिन्दी साहित्य से लेकर समकालीन हिन्दी साहित्य में, जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति में एकता का स्वर मिलता है। साहित्य का मूल उद्देश्य जीवन और समाज की कुरीतियों व बुराइयों से हटकर स्वस्थ, सुंदर और आनंदमय जीवन की ओर अग्रसर करना है।

साहित्य जीवन की नींव है। यह हर तरह के क्षेत्र से जुड़े हुए ज्ञान को एक जगह पर शब्दों में समेट देता है और यही शब्द हमेशा–हमेशा के लिए साहित्य के रूप में जीवित रहते हैं। साहित्य एक ऐसी सामग्री है जो पाठक के लिए भरोसेमंद है, उन्हें नैतिकता सिखाती है और उन्हें अच्छे निर्णय लेने का अभ्यास करने के लिए प्रोत्साहित करती है। समाज में साहित्य का अध्ययन होना जरूरी है, क्योंकि यह मानवीय रिश्तों को जोड़ने की क्षमता प्रदान करता है और हमें बताता है कि क्या सही है और क्या गलत है। साहित्य वही है जिसमें उच्च चिंतन हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाई हो। हर एक क्षेत्र साहित्य के बिना अधूरा है। वह कोई भी घटना हो सकती जो लेखनी के माध्यम से साहित्य की किसी न किसी शैली में समाहित है।

अपनी लेखनी के माध्यम से इन्होंने भारतीय विचारकों एवं पाश्चात्य विचारकों की मानव मूल्य विषयक अवधारणा को समस्त साहित्यिक रचनाधर्मिता में चुनचुनकर निकालने का प्रयास किया है। "हितेन सह सहितं/साहित्यम्" कहकर साहित्य शब्द के व्याख्याकारों ने उसमें स्वयं कल्याण भावना की प्रतिष्ठा की है। इन्होंने पुस्तक की भूमिका में लिखा है–"साहित्य के माध्यम से ही मानव नैतिक आदर्शों और मूल्यों को प्राप्त करता है– तभी वह सही मायने में समष्टि मानव बनता है। मानव का जीवन नियमों, सिद्धांतों, आदर्शों एवं मानदंडों का समुच्चय होता है, जिसके आधार पर उसका मूल्यांकन किया जाता है और मानदंड का आधार मानवीय मूल्य या जीवनमूल्य ही है।"

हमारा साहित्य भले ही किसी भाषा में या किसी विधा में ही उसमें मूल्यों का दर्शन होते हैं। साहित्य संघर्षशीलता को जीवन–ज्योति के रूप में इन्होंने समकालीन कवियों, कथाकारों, उपन्यासकारों में भी देखा है, उनके आत्मविश्वास, मनोयोग, आस्था, अदम्य उत्साह के साथ साहित्यानुभूति की अभिव्यंजना को देखा है। सर्वहारा के प्रति उनमें संवेदनशीलता को देखा है, मूल्यों के ह्रास पर उनकी चिंता को तथा नाना अनुभूत सत्यों को देखा है। साहित्य में मानव–मूल्य तो वैदिक काल से आ रहा है–

"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःख भाग्भवेत्।

डॉ0 पशुपतिनाथ उपाध्याय ने अपनी पुस्तक के प्रथम अध्याय में जीवन मूल्य और जीवन दृष्टि पर प्रकाश डाला है–"जीवन मूल्यों पर चलने से मानव को सुख, शांति एवं प्रेमतत्व की प्राप्ति होती है। स्व–से–पर की यात्रा सुखद और प्रीतकर होती है। स्व परिवर्तन से ही समाज का परिवर्तन संभव होता है और समाज परिवर्तन से राज्य और राष्ट्र परिवर्तन सहज सुलभ हो जाता है, जिससे सुदृढ़, सबल एवं स्वस्थ राष्ट्र की निर्मिति संभव है। मानवता का इतिहास मूलतः मानव की वे चारित्रिक उपलब्धियाँ हैं जिसे मानव–मूल्य कहा जाता है। इन्हीं मूल्यों से मानव समाज में मानव के सम्पूर्ण क्रिया–कलाप, वाणिज्य–व्यापार का आकलन और मूल्यांकन किया जाता है। वास्तव में मूल्य, मानव को और अधिक मूल्यवान बनाते हैं।" किसी भी समाज और संस्कृति में जन्में मनुष्य और समाज के विकास के लिए अन्वेषण मूलभूत आवयकता है और अनिवार्यता भी। साहित्य के मूल्यों, तथ्यों की खोज समाज और साहित्य को दृढ़ता प्रदान करता है। जो हमारी संवेदना की उपज है। संवेदना ही एक ऐसी चीज है जो साहित्य और समाज को जोड़ती है। संवेदनहीन मानव या साहित्य समाज को कभी प्रभावित नहीं कर सकता। वह मात्र मनोरंजन कर सकता है। साहित्य मनुष्य की मनुष्यता प्रदान करता है तथा जीवन के मूल्यों को भी प्रतिष्ठित करता है। लेखक अपने दूसरे अध्याय में भारतीय विचारकों तथ पाश्चात्य विचारकों को मानव मूल्य विषयक अवधारणों तथा मूल्यों का वर्गीकरण उद्धृत किया है।

भारतीय चिंतन मूल्य परक यह अवधारणा एक सशक्त और सबल अवधारणा के रूप में देखने को मिलती है। सकारात्मक सोच, वैश्विक प्रतियोगिता एवं जीवन–मूल्यों के प्रति अटूट आस्था एवं विश्वास की भावना ही वैश्विक स्पर्धा में राष्ट्रोत्थान करा सकती है। इन्होंने रचनाधर्मिता को सामाजिक सरोकार से जोड़कर देखा–साहित्यकार स्वस्थ मूल्यों की स्थापना के लिए प्रतिबद्ध होता है ताकि वह सार्वभौमिक एवं सार्वदेशिक साहित्य की सर्जना कर सके। रचनाकार ऐसे मूल्यों को स्थापित करता है जो समाज के विकास में सहायक सिद्ध हो। साहित्य में मानव–मूल्यों को इन्होंने इन रूपों में पाया है–आध्यात्मिक, भौतिकवादी तथा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के परिप्रेक्ष्य में साध्य साधन मूल्य के अतिरिक्त शारीरिक मूल्य, आर्थिक मूल्य, मनोरंजनात्मक मूल्य, सामुदायिक मूल्य, चारित्रिक मूल्य, सौंदर्यात्मक मूल्य, बौद्धिक मूल्य तथा धार्मिक मूल्य।

हमारा साहित्य सिर्फ स्वन्तः सुखाय नहीं, सर्वजन हिताय और सर्वजन सुखाय की भावना से सृजित हो, क्योंकि साहित्य सामाजिक जीवन व मानवीय जीवन की वह आधारशिला है जो कभी नींव का पत्थर होती है, उस पर हम बड़ी–बड़ी इमारतें खड़ा करते हैं, जिससे हमें समस्याओं से लडने की प्रेरणा मिलती है

और नई भावनाओं तथा जिम्मेदारियों की बखूबी निभाने का संबल भी प्राप्त होता है। आत्मीयता के माध्यम से हमारे जीवन के अनछुए पहलुओं को भी साहित्य ने ही उकेरा है जिसमें हमें समस्त मानवीय अथवा सामाजिक जीवन की पहेली का ज्ञान हो जाता है। प्रेम हो या भक्ति, इर्ष्या हो या घृणा, उल्लास हो या जुगुप्सा साहित्य में उसकी अभिव्यक्ति, क्रियाओं को प्रेरणा देने में प्रवृत्त होती है। इनकी अनुभूतियों और संवेदनाओं के बीच पारस्परिक संबंध होता है जो यथार्थ बोध की अनुभूति के प्रति आग्रहशील रहता है।

साहित्य वास्तव में मानव जाति का अविच्छिन्न साथी रहा है। यही कारण है कि मानव जीवन का वर्तमान,भूत और भविष्य साहित्य से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। समाज की अपराजेय शक्ति साहित्य में निहित है। इस प्रकार साहित्य मानव–मूल्यों तथा जीवन–मूल्यों का रक्षक, संरक्षक एवं निरीक्षक सिद्ध हुआ है। तृतीय अध्याय में इन्होंने मूल्य प्रेक्षण की अवधारणा को गवेषणात्मक शैली में अभिव्यक्ति दी है। पंचम अध्याय में तो समकालीन कविता के मूल्यबोध को रेखांकित किया है, जिसमें कवियों और उनकी कृतियों के स्थान पर प्रमुख प्रवृत्तियों को उद्भाषित किया है। षष्ठ अध्याय में कथा–साहित्य में मूल्यों के क्षरण पर, उसके पुनर्स्थापन पर चिन्ता करते हुए प्रमुख उपन्यासों और लेखकों को संदर्भित किया गया है। सप्तम अध्याय में पाश्चात्य संस्कृति को समकालीन नाटकों में मूल्यबोध को अपने लेखन का केन्द्रबिन्दु बनाया है। इनका दशम अध्याय संस्कृति की अवधारणा और मूल्यों की प्रस्तुतिकरण पर आधारित है, तो एकादश अध्याय समसामयिक परिप्रेक्ष्य में मूल्यों के ह्रास के साथ–साथ मूल्यपरक साहित्य सृजन पर बल दिया है तथा द्वादश अध्याय साहित्य और मूल्य संकट को यथार्थवादी धरातल पर प्रस्तुत करने में सक्षम सिद्ध हुआ है।

इस प्रकार इन्होंने मानव मूल्य को साहित्य और जीवन का आधार बना कर अनेकों उदाहरण से इसे संपुष्ट भी किया है। दिनकर, प्रसाद, प्रेमचन्द, धर्मवीर भारती, डॉ0 रामविलास शर्मा, बाबू गुलाब राय, डॉ0 शम्भुनाथ सिंह आदि महान साहित्यकार, चिंतकों के साहित्य को इन्होंने बौद्धिक चेतना के साथ–साथ मानवीय मूल्यों का दस्तावेज के रूप में प्रस्तुत करते हुए सत्साहित्य को ही समाजोपयोगी और मानवोपयोगी सिद्ध किया है। डॉ0 पशुपतिनाथ ने अपनी भूमिका में भी स्पष्ट कर दिया है– "साहित्य को सार्वभौमिक और सार्वकालिक बनाने हेतु मूल्य परक साहित्य ही सृजित किया जाय ताकि मानवीयता जीवित और सुरक्षित रह सके। वास्तव में मूल्यों का विकास ही सत्साहित्य का लक्ष्य होना चाहिए। और यही साहित्यकार का सार्वभौम आदर्श भी है। साहित्य दर्शन की समग्रता ही वैश्विक दर्शन की सीढ़ी है। अतएव जीवन मूल्य, मानव मूल्य या नैतिक अथवा आध्यात्मिक मूल्य समग्र रूप में मूल्य के अन्तर्गत ही स्वीकारे जाते है।" अतः लेखक ने विभिन्न अवधारणाओं एवं मान्यताओं से संदर्भित मानव के सर्वांगीण विकास हेतु उनके मानवीय मूल्यों को पुनर्स्थापित करने का प्रयास किया है जिससे नव्य वैचारिक स्वातंत्र्य, उदारता, दयालुता, मानवीयता की स्थापना सहज रूप से हो सके। मानव मूल्यों से अभिप्रेत साहित्यिक विविधता को दर्शानेवाली यह पुस्तक अवश्यमेव पठनीय है।(प्रकाशक– जवाहर पुस्तकालय, मथुरा,मूल्य–800) मो0–9897000951

२. बिहार की महिलाएँ

यह पुस्तक महिला चर्खा समिति, कदमकुआँ, पटना एवं अध्यक्ष श्रीमती तारा सिन्हा के संयोजन में, शिवपूजन सहाय द्वारा संपादित यह पुस्तक देशरत्न डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को, बिहार की महिलाओं द्वारा विविध सार्वजनिक क्षेत्रों में की गई सेवाओं का विवरण देते हुए, अभिनंदन ग्रन्थ के रूप में भेंट की गई थी, जिसका यह दूसरा संस्करण प्रकाशित है। ग्रन्थ के पुनर्मुद्रित स्वरूप को भाषा–वर्तनी की दृष्टि से पुनरीक्षित करने का दुर्वहभार सुविख्यात साहित्यकार एवं बिहार हिंदी साहित्य सम्मेलन के प्रधानमंत्री डॉ. शिववंश पांडेय ने उठाया है।

इसमें वैदिक युग से आधुनिक युग तक की बिहारी महिलाओं के द्वारा राजनीति, समाज, शिक्षा, धर्म, साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में जो सेवा और प्रगति हुई थी उसका विवरण सुयोग्य एवं विश्वसनीय व्यक्तियों द्वारा उपस्थित किया गया है। इस ग्रन्थ की मूल परिकल्पना ''महिला–चर्खा–समिति'' की संचालिका श्रीमती मनोरमा देवी के मस्तिष्क की उपज है। इसमें आए प्रतिपाद्य विषय का मूल उद्देश्य नारी–समाज में यह प्रचारित व प्रसारित करना था कि भारतीय संस्कृति का प्राचीन इतिहास–चाहे वह वैदिक युग का हो अथवा उपनिषद्काल या पुराणकाल का, कहीं भी हमारे सामने नारी की दयनीय दशा का चित्र अंकित नहीं है। तब भी वह विकास पथ पर प्रगतिशीला थी। वे विदुषी, दार्शनिक, चिकित्सक, आचार्या तथा नृत्य–गान–विद्या में कुशल थीं। मैत्रेयी, गार्गी, लोपामुद्रा, इंद्राणी तथा घोपा आदि नारियाँ, कवयित्रियों में आज भी गिनी जाती हैं। समाज में उनका पूर्ण समुन्नत रूप दर्शनीय था।

आज नारी प्रगति की चर्चा सर्वत्र हो रही है, किन्तु इसका यथार्थ स्वरुप क्या है और क्या होना चाहिए इस बात पर भी पुस्तक में काफी चर्चाएँ हैं, जैसे कि शिक्षा, शिक्षण तथा प्रतिनिधित्व में, अर्थोपार्जन में और स्वतंत्रता में भी महिलाओं का स्थान नगण्य नहीं कहा जा सकता है। किन्तु नारी का जो सर्वप्रधान कर्तव्य है– ''सुमाता बनकर सन्तान–पालन करना और सुगृहिणी बनकर परिवार में सुख–शांति एवं श्री का संवर्धन करना, उसका पालन आदि सम्यक् रीति से नहीं हुआ, तो अवश्य ही हमें विचार करना होगा कि जो शिक्षा विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में लड़कियों को मिल रही है, उसे हम सच्चे अर्थ में सफल कह सकते हैं या नहीं?अच्छे नागरिक के रूप में राष्ट्र एवं समाज के प्रति मानवीय मूल्य का उत्पादन कम हो रहा है या अधिक?'' साथ ही इसकी भी चर्चा है कि भारत की नारियाँ अबला नहीं हैं, देवी और शक्ति स्वरूपा हैं। किन्तु तुच्छ भोग–लालसा चरितार्थ करने के मोह में यदि नारी स्वाभाविक कर्मक्षेत्र को छोड़कर वाह्य कर्मक्षेत्र को ही अपने लिए उपयुक्त स्थान समझने का आग्रह दिखाए, तो समाज–कल्याण की दृष्टि से यह शुभ लक्षण नहीं कहा जा सकता। क्योंकि भोग–विलास, अभाव और तृष्णा की कोई सीमा नहीं

हैं। मनुस्मृति की यह पंक्ति भी अभिव्यक्त है–

''प्रजनार्थ महाभागः पूजार्हा गृहदीप्तयः।
स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु मा विशेषोऽस्त कश्चन।''

अर्थात् स्त्रियाँ सन्तान के लिए हैं, इसलिए बड़ी भाग्यशालिनी हैं तथा पूजा के योग्य हैं और वही घर की ज्योति तथा श्री के समान हैं।

''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः''

जहाँ नारी की पूजा होती है वहाँ देवता वास करते हैं।

बिहार की महिलाओं में आए अंधविश्वास झाड़–फूक, मनौती आदि का होना। अत्यधिक पूजा–पाठ, व्रत–उपवास, दान–दक्षिणा, विधि–विधान, गंगा नहाने में गीत, रोपने में गीत, चक्की चलाने में गीत, तथा हर एक ऋतुओं पर गीत आदि में भी खुलकर भाग लेती रहती हैं। नारी के विशेष गुण ही दया, कोमलता, शांति, प्रेम, समर्पण और बलिदान हैं। पाशविकता, हिंसा, क्रोध और द्वेष प्रभृति दुर्गुण प्रकृत्या नारी में नहीं पाए जाते।

चन्दनवाला चम्पा के राजा दधिवाहन की पुत्री जो छतीस हजार साध्वियों के संघ की अधिष्ठात्री देवी थी उसे नारी समाज में अद्‌भुत चेतना और जागरण की लहर फैलाने का श्रेय है। इनके प्रयास से नारी समाज ने समाज में अपने खोए हुए गौरव को प्राप्त किया। कुमारदेवी वैशाली–गणराज्य की अंतिम अधिष्ठात्री ने कांटों का ताज अपने माथे पर रख नारी समाज को ही नहीं, अपनी समस्त मातृभूमि के गौरव को वर्षों तक अक्षुण्ण रखा। भारतीय नारी जाति द्वारा यह भी श्रेय की बात रही है कि सतीत्व के आदर्श का सदैव पालन किया जाता रहा है जिसमें बिहार की स्त्रियाँ भी सदैव आगे रही हैं। वैशाली के प्रजातन्त्र में भी नारी ने सामाजिक क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण भाग लिया है। उस समय नारियों का सहयोग सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक सभी क्षेत्रों में प्राप्त था। जैन काल में नारी केवल भोगैषणा की पूर्ति का साधन नहीं थी, वरन् उसे भी स्वतंत्र रूप से विकसित और पल्लवित होने की समुचित सुविधाएँ प्राप्त थी। कन्या, गृहिणी, जननी और विधवा सभी अपने स्वार्थ का सदुपयोग करने के साथ परार्थ में भी तत्पर थीं। बौद्धधर्म में जितनी भी बौद्ध भिक्षुणियाँ थीं, उनमें राजगृह की दो नारियाँ धर्मदिन्ना और शुक्ला से धर्मज्ञान और वक्तृत्व–शक्ति के आगे कोई दूसरी भिक्षुणी नहीं ठहरती। चरखे का इतिहास से भी ग्रामीण स्त्रियों के जीवन से बहुत पुराना नाता है। इस जमाने में भी बापू ने चरखे के पुनरुद्धार की जब बातें सोची, तब स्त्रियों ने ही आगे आकर इस काम को पुनः उठाया। इससे अनपढ़ स्त्रियों की भी प्रगतिशीलता का पता चलता है। इस रचना की खास विशेषता है कि इसमें नारी एवं पुरुष के बीच पारस्परिक सहानुभूति की भावना को नितांत अपेक्षित माना है। अंध विश्वासों से चिपका हुआ पुरुष नारी का घर–परिवारों के बाहर कदम नहीं रखने देता। ऐसी ही परिस्थिति में यदि नारी शिक्षिता है उसे अपने अधिकारों का ज्ञान है; तो विद्रोह की आग अवश्य भड़क पड़ती है। नारी अपना विकास चाहे, और पुरुष उसके मार्ग में अवरोध पैदा करे, तो समस्या निस्सन्देह जटिल होगी। अतः आज के पुरुष को यह समझना है कि नारी का विकास उसका अपना ही विकास है–उसके समाज एवं राष्ट्र का विकास है। हमारे समाज का एक–एक पुरुष जब एक–एक नारी के विकास की ओर उन्मुख कर सकते है और तभी नारियों का बहुमुखी विकास भी संभव है।

भारत सरकार आज स्त्रियों के बहुमुखी विकास के लिए सर्वथा प्रयत्नशील है। इनकी प्रगति के लिए आज उन्हें वे सभी सुविधाएँ दी जा रही हैं, जो पुरुषों को प्राप्य है। भारत के कई प्रान्तों में आज नारियाँ भी ऊँचे–ऊँचे पदों को सुशोभित कर रही हैं। मुगल कालीन भारत में जिस पर्दा प्रथा का सूत्रपात हुआ था, वह अन्य प्रान्तों से तो धीरे– धीरे विदा ले रही है, किन्तु इसके इतिहास का अतीत भारत की संस्कृति से कोई संबंध नहीं है जो हम उससे चिपके पड़े रहें। वह तो समय की गति के साथ आयी हुई एक कुरीति है, जिसका अंत करके आगे बढ़ना हमारा दायित्व है। वास्तविक पर्दा या लज्जा का आवरण तो नारी का शील है, जो सदा उसे विनम्र बनाये रखने में समर्थ हो सकता है। उन्नीसवीं सदी भारत के इतिहास में एक प्रश्नवाचक चिह्न की तरह है, जहाँ प्राचीन और नवीन कंधे परस्पर घिसते हैं। नारी का यथोचित सम्मान नहीं रह गया था। पुरुषों ने नारी को देवी, माता, अर्धांगिनी, सहचरी आदि कहकर बहलाया और डटकर अत्याचार किया। बीसवीं सदी का प्रारम्भ होते–होते स्त्री–शिक्षा में लोगों की दिलचस्पी बहुत बढ़ गई। पुनः स्त्रियों का उन्नयन आधुनिक भारत की एक बड़ी सफलता है। इधर कुछ वर्षों से बिहार में स्त्री–शिक्षा मन्द गति से ही सही, लेकिन अप्रतिहत रूप से बढ़ती जा रही है। राष्ट्रीयता तथा अन्य तत्त्वों से प्रेरित एक नया जागरण आया है, जिसके कारण अब स्त्री–शिक्षा में बहुत अधिक प्रगति हुई है। इस पुस्तक में लगभग एक सौ विद्वानों के बहुमूल्य विचारों को दर्शाया गया है, इसी आशा से कि इससे समस्त भारतीय महिला–समाज को एक नई प्रेरणा मिलेगी। प्रकाशक–लक्की इन्टरनेशनल, दिल्ली, मूल्य–995, मो. न. – 9871911248

३. पीरा

डॉ0 शम्भुनाथ मिस्त्री, दुमका (झारखण्ड) द्वारा रचित अंगिका काव्य–संग्रह 'पीरा' में एक खास तरह के उदात्त भाव और करुणा ने इनके अनुभवों को ऐसे मानवीय तजुर्बे में बदल दिया, जिससे कोई भी व्यक्ति अपना निजी रिश्ता महसूस कर सकता है जो दुःख के जीवन–परिवेश से संघर्ष की प्रक्रिया में पनपा है। महादेवी वर्मा भी कहती है–

''पर शेष नहीं होगी यह, मेरे प्राणों की पीरा''

शम्भुनाथ जी इसी संघर्ष के कवि हैं। इनका काव्य इसी संघर्ष का प्रतिफल है।

''दुःख–सुख सम है सर्वदा, जिस नर को यह ज्ञान।
धीर पुरुष, उसके लिए, पीड़ा मोक्ष समान।।''

संग्रह में कवि आशान्वित है कि दुःख हमेशा उम्मीद की किरण लेकर आता है। अनादि काल से ही मानव परम शांति, सुख व अमृत्व की खोज में लगा हुआ है। वह अपने सामर्थ्य के अनुसार प्रयत्न करता आ रहा है लेकिन उसकी यह चाहत कभी पूर्ण नहीं हो पा रही है। ऐसा इसलिए है कि उसे इस चाहत को प्राप्त करने के मार्ग में चलने की पीड़ा नहीं हुई है। वेदना जीवन का अनिवार्य भाव है। वेदना काव्य को स्पंदन देते आई है। यहाँ कवि की वेदना काव्य–साहित्य

की सर्वोत्कृष्ट निधि है और यही इनके काव्य का प्रतिपाद्य विषय भी है। इन्होंने पीड़ा को गले लगाया है, क्योंकि वही कालांतर में शीतलता देती है–

"कहियो नै होतै हमरो,
जिनगी पीर सें खाली
हमरो परान के करतें
रहतै पीरा रखवाली।"

पीड़ा केवल दुःख का भाव नहीं है, वरन् यह एक प्रकार की साधना है जो सुख से मिलने में सहायक सिद्ध होती है–

"सूरज के ताप, अगन छै
अधंड़ ओला घन–गर्जन,
जेतना विपदा आफत छै
माटी सें ओतने अर्जन।"

संग्रह में कवि की भावना इस प्रकार अभिव्यक्त है कि जीवन की कठिनाइयों को परीक्षाओं की तरह देखें, उनकी तैयारी रखें और सकारात्मक परिणाम की उम्मीद रखें। दुखों से मुक्ति का मतलब बस इतना ही है कि आप अपना दृष्टिकोण बदलें। समझें इस सत्य को कि जैसे रात के बाद सुबह होती है ऐसे ही आपके दुखों का भी अंत होगा और सुखों की सुबह आएगी। रात जितनी अंधेरी होगी, सुबह उतनी ही खूबसूरत। सुखों की पहचान हमें दुखों ने कराई है। अगर दुख न होते तो जीवन में रस न होता, सीखने जैसा कुछ नहीं होता।

दुःख इनका प्रिय सहचर बन गया है जिससे पृथक होना इन्हें अभीष्ट नहीं। यहाँ कवि अपनी संकीर्ण परिधि से निकलकर जीवन और जगत की उस व्यापक सीमा पर आ गए हैं जहाँ ये सुख और दुःख को समान समझने लगे हैं–

"केकरों भीतर नै चिन्ता
केकरों भीतर नै दुःख छै
सौंसे जग पीरा भरलों
पीरे जिनगी रों सुख छै।"

जिसके जीवन में न पीड़ा हो, न दुःख हो और न कोई दर्द हो उसके प्राणों में कोई कविता न होगी; उसके हृदय में कोई गीत न होगा, उसकी आँखों में आशा की कोई चमक न होगी। वह अपनी निराशा की, हताशा की जिदंगी से समझौता करके बैठ जाएगा; उसके जीवन में कोई संघर्ष, कोई साहसिक अभियान न होगा, कोई गति न होगी। उसके जीवन में कोई बहाव न होगा; वह चेतना का मात्र डबरा बनकर रह जाएगा। इसलिए कवि कहते हैं–

"पीरा अनन्त रों आभा
पीरा आनन्द शिखर छै
पीरा विष भी अमरित भी
पीरा बम–बम हर–हर छै।"

दुःख या उसकी अनुभूति पीड़ा अथवा दर्द तो बुद्ध–पुरुष को भी उतना ही मिलता है जितना हमें मिलता है। लेकिन बुद्ध दुःख से दुखी नहीं होते हैं, क्योंकि उन्हें दुःख के बाद आनेवाला सुख का पता है। उन्हें दुःख छूता नहीं, क्योंकि वे उसमें भी आनंदित हैं; वे दुःख को भी उत्सव बना लेते हैं, वे दुःख में भी ध्यानस्थ रहते हैं।

"छै रंग रूप सें चललों
सब दिन केकरो मनमानी
सुख–दुःख पीरा छै एक्के
एक्के छै कथा कहानी।"

X X X

"छै रूप गंध में एक्के
सबके परान में पीरा,
कोय्यो समझे छै माटी
कोय्यो लें चकमक हीरा।"

कवि इस "पीरा" को तीन भागों में बाँटा है। "पीरा", "मुस्कान" और फिर "आसरा"। पीड़ा को मुस्कान से स्वीकारें और प्रतीक्षा करें तो सुख आना ही है। दुःख जीवन का ही हिस्सा है, वह तभी विदा होगा जब जीवन विदा होगा। वह तो शरीर के साथ आता है और शरीर के साथ जाता है। जब हम जन्म–मरण से छूटेंगे तभी हम दुःख से छूटेंगे। लेकिन तब हम समष्टि में खो जाएंगे, उससे एक हो जाएंगे। हम तब नहीं रहेंगे– सागर में बूंद की तरह खो जाएंगे। लेकिन जब तक हम हैं, दुःख रहेगा। दुःख जीवन का अभिन्न अंग है। इसे मुस्कराकर स्वीकारना होगा।

कवि इस संग्रह को चौदह मात्रिक छंद में, सरल सुबोध भाषा में मानवीय संवेदनाओं से जागृत करने का प्रयास किया है।

प्रकाशक– मयूराक्षी पब्लिशर्स, कोलकाता–25, मो.– 9939109764

४. ईशा : भोलानाथ कुशवाहा

"ईशा" नाटक के नाटककार भोलानाथ कुशवाहा, मीरजापुर, इलाहाबाद, (उत्तर प्रदेश) साहित्य लेखन के साथ नाट्य मंच से भी सक्रियरूप से जुड़े रहे हैं। स्वयं भी ये जाने–माने नाटककार लक्ष्मीनारायण लाल के निर्देशन में अभिनय कर चुके हैं। साथ ही इन्होंने तेलगु, तमिल और बांग्ला भाषाओं के अलावा संगीत (सितार) की भी शिक्षा पायी है। इन्होंने साहित्य की पद्य और गद्य की कई विधाओं कविता, दोहा, हाइकु, ग़ज़ल, कहानी, लघुकथा, नाटक आदि में लेखन कार्य किया है।

"ईशा" नाटक कुशवाहा जी का नाट्य लेखन की प्रतिभा का कुशल परिचायक है। यह नाटक पाँच भाग में और 29 उपभाग में रहने के कारण अपने आकर में बहुत बड़ा है जिसे हम क्रमशः श्रृंखलाबद्ध ही प्रस्तुत कर सकते हैं। और यह नाटक फिल्मी तकनीकी पर खड़ा उतरने वाला सीरियल नाटक के रूप में काफी उपयुक्त है।

कुशवाहा जी का यह नाटक "ईशा" जिसकी मूल कथा महिला विमर्श की है जो आज की सबसे बड़ी समस्या बन कर उभरी है। यूँ तो मानव सभ्यता ने पाषाण युग से परमाणु युग तक का लम्बा सफर तय कर लिया है। इस दौरान कई प्राचीन सभ्यताओं ने जन्म लिया और धरती के कोने–कोने में फैल गये। कुछ रह गये कुछ समय की धारा में बह गये। अगर हम भारतीय सभ्यता की बात करें तो इसे विश्व की प्राचीनतम और सुव्यवस्थित सभ्यता माना गया जो अपनी उच्च कोटि की पारिवारिक व सामाजिक व्यवस्था के लिए जाना जाता है। जबकि परिवार सबसे छोटी इकाई है किन्तु वहाँ एक समृद्ध राष्ट्र के सभी उपादान और कारक मौजूद रहते हैं। इस परिवार व्यवस्था के संचालन में नारी और पुरुष की समान भागीदारी और समान महत्त्व है।

पुरुष परिवार को पोषण देता है, अपना रोजगार से स्वजनों का पेट पालता है परन्तु परिवार संचालन की वास्तविक जिम्मेदारी नारी के उपर ही है जिसे सेवा, त्याग, और करुणा की देवी कहा जाता है। परन्तु इस प्रकार की शास्त्रीय परिभाषाएँ जो भी हो वास्तविकता कुछ और ही प्रतीत होती है। पुरुष आज भी वही है जो पहले था, प्रगति पथ पर निरंतर चलता हुआ, संघर्ष, शौर्य, पराक्रम, अहंकार आदि गुणों से भरपूर, अपने धुन में मस्त। परन्तु आज के इस आधुनिक समाज में नारी की स्थिति क्या है, यह जानने की कोशिश करेंगे तो इनका यह नाटक बहुत सारे मानवीय प्रश्नों को सामने लाता है।

यद्यपि आज के इस आधुनिक वैज्ञानिक युग में नारियों ने कृषि से लेकर अंतरिक्ष तक अनेक क्षेत्रों में पुरुषों के बाराबर स्थान हासिल कर लिया है, परन्तु आज भी ज्यादातर महिलाएँ अपनी मौलिक अधिकारों से वंचित रहने को विवश हैं। महिला सशक्तिकरण के जितने भी प्रयास किये जा रहे हों, पर नारी को अपने अस्तित्व की सबसे बड़ी चुनौति उसे अपने घर में, माँ की कोख से ही मिल रही है। इससे बच भी गयी तो धरती पर आने के बाद उसके लिए जैसे चुनौतियों का अम्बार लगा हुआ है। भ्रूण हत्या, लैंगिक भेदभाव, घरेलु हिंसा, दहेज निर्यातना, यौन उत्पीड़न, छेड़छाड़, शोषण, दमन, बलात्कार, तिरष्कार मानसिक यंत्रणा आदि अनेको समस्याएँ हैं जिनसे हर पल महिलाओं का सामना होता रहता है। जबकि प्रकृति ने नर–मादा का समन्वय करके सृष्टि की निरंतरता को बनाए रखा। फिर भी इस नाटक में पात्रों के माध्यम से महिलाओं के स्वतंत्र अस्तित्व, सम्मान और उनकी आजादी के लिए अकूत संघर्ष करते दिखाई पड़ते हैं। आज का जन–समाज अतीत के उस समन्वय के पीछे छिपे हुए अटूट अनुराग–सूत्र का अनुमान नहीं करता है, वरन् उसे 'पुरूष की कठोर शासन व्यवस्था' जैसे शब्दों से अभिभूत करता है। यही कारण है कि स्त्री आज तक जकड़ी हुई एक पुतली मात्र है जो गृह व्यवस्थाओं को सँभालती हुई पुरूष की इच्छाओं को तृप्त करने वाली है। नारी के उस गौरवपूर्ण एवं महिमामय रूप को हम भूल जाते हैं, जो अतीत की कुशल गृहणी, कुशल जननी एवं आदर्श पत्नी के रूप में रहती चली आई हैं। घर की चाहारदीवारियों के भीतर की वह असूर्यम्पश्या नहीं थीं, वह सदा स्वतंत्र थी; किसी के द्वारा शासित भी नहीं थीं, वरन् स्वंय शासिका थीं। अपने क्षेत्र में अपने को कुशल प्रमाणित करना यदि पराधीन होना, शासित होना अथवा वासनाओं की तृप्ति का साधन–मात्र समझा जाय, किंबहुना वह यदि सजाने के निमित्त प्लास्टिक की गुड़िया–मात्र समझी जाय, तो इसमें दोष हमारा तथा हमारी शिक्षा पद्धति का है या यूँ कहें कि 'पतन की ओर उन्मुख होनवाली हमारी नूतन संस्कृति' का है। नाटक के द्वारा कुशवाहा जी दर्शाना चाहते हैं कि आज भी हमारे यहाँ नारी एवं पुरुष के बीच जो पार्थक्य की इतनी लम्बी–चौड़ी खाई खुद गई है, उसके पीछे और भी कारण हैं जो नारी के विकास–पथ का बाधक बन रहा है। वह है बाल्यावस्था से ही नारी के मस्तिष्क में दुराव की भावनाओं को उत्पन्न करना, नर–नारी दोनो में अन्तर की रेखा आरम्भ से ही खींच देना। कन्या के जन्म पर परिवार का दुःखी हो जाना, ऐसा मनोवैज्ञानिक आज भी है। जहाँ पुत्र के जन्म पर शहनाइयाँ बचती–अन्न–वस्त्र एवं नाना प्रकार की वस्तुएँ खुले दिल से लुटाई जाती, वहीं कन्या के जन्म पर सिर्फ अपना ही परिवार नहीं वरन् पास– पड़ोस का उदास हो जाना आज भी देखने को मिलता है। कहीं न कहीं पति और पत्नी की स्निग्धता में भी सहृदयता नहीं रह पाती। ऐसे में नाटककार के द्वारा इस नाट्यकृति में अपने समय के बहुत सारे समसामयिक विषयों पर बहस और विचार–विमर्श किया गया है। इसमें महिलाओं के साथ आज की ज्वलन्त सामाजिक समस्याओं पर भी प्रकाश डाला गया है।

नाटककार कहना चाहते हैं कि आज के पितृसत्तात्मक मानव–समाज में स्त्री की महत्ता गौन है। यह एक प्राकृतिक तथ्य है कि जो जितना महत्वपूर्ण होता है वह उतना ही अदृश्य होता है। समूचे बह्माण्ड को संचालित करने वाली वह शक्ति भी अज्ञात है। वृक्ष की जड़ें कमजोर हो तो वह गिर जायगा। परिवार और समाज की आधार–शिला–मानव की निर्मात्री कमजोर और अविकसित हो, तो क्या होगा। आज हर क्षेत्र में विध्वंस के कगार पर बैठी मानवता को दानवता निगलती जा रही है, मानव गिरा हुआ और पथभ्रष्ट सा दिखाई दे रहा है। इस स्थिति को संभालने हेतु समाज की आधार शिला–सभी को मजबूत और सर्वांगिन विकसित करने पर पूरा ध्यान देना होगा। आज पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में विकास का समाधान क्या होगा इस पर समाज को सोचना होगा। हालाँकि आज आदमी का दैनिक जीवन भी आसान नहीं रह गया है, उसके भी सामने कदम–कदम पर मुश्किलें मुँह बाये खड़ी हैं। नाटकों में दकियानूसी और आधुनिकता का भी पोल खोला हुआ है। गाँव से जूझते हुए यह नाटक देश की राजधानी दिल्ली तक पहुँचकर अपने सवालों का जबाव खोजता है जहाँ राजनीति और विचारों में प्रतिरोध है। आतंकवाद जैसा क्रूर विषय भी इसमें शामिल है। प्रकृति भी अपनी आँचल फैलाकर नाटक में दर्शकों को शकुन पहुँचती है। भाषा भी सरल, सुबोध तथा रोचक है। नाटककार को मेरी ओर से हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएँ हैं।

प्रकाशकः–उदीप्त प्रकाशन, प्रयागराज मो.– 9335466414

५. ३० ग़ज़लगो : ३०० ग़ज़लें''

इस पुस्तक को डॉ. कृष्ण कुमार प्रजापति, राउरकेला, ओडिशा, ने अपने संपादन में गंगा–जमुनी तहजीव की ज़दीद ग़ज़लों को बहुत ही खूबसूरती के साथ संग्रह रूपी गुलदस्ते में समाया है। जिसकी तमाम ग़ज़लें आम आदमी के दिल को छूकर आसानी से दिल में उतर जाने का हौसला भी रखती हैं तथा परंपरा को नई सोच, नई दृष्टि, नए धरातल प्रदान कर, उसमें नई रूह का संचार करके साहित्य के विकास में निश्चित रूप से अपना योगदान देकर भारत की समरसता को दर्शाती हैं।

संगीत को त्रिवेणी संगम कहा जाता हैं। इस संगम में तीन बातें, शब्द, तर्ज और शिल्प अत्यंत अनिवार्य हैं। इनकी संगृहीत ग़ज़लों की लोकप्रियता इस बात की पुष्टी करती है कि इसमें अच्छे शब्द के साथ अच्छी तर्ज और अच्छा शिल्प समाहित हैं। संग्रह के संयोजन से संपादन तक की यात्रा अति सजगतापूर्ण हुई है। इससे पूर्व प्रकाशित ''बीस गज़लगो : दो सौ ग़ज़लें'' के बाद इनकी यह दूसरी मुलाकात सम्मानित ग़ज़लकारों की ग़ज़लों को लेकर आने में हुई है, जिसमें डॉ. चन्द्र त्रिखा, हस्तीमल 'हस्ती', श्याम सखा 'श्याम', ज्ञान प्रकाश 'विवेक', डॉ. विनोद प्रकाश गुप्ता 'शलभ', महेश 'अश्क', ज़हीर कुरैशी, महावीर 'तन्हा', हृदयेश 'मयंक', प्रेम किरण, रमेश 'कँवल', माधव कौशिक, ओम प्रकाश 'नदीम', अनिरूद्ध सिन्हा आदि मूर्धन्य, वरिष्ठ एवं नवीनतम ग़ज़लकारों की ग़ज़लें अपनी प्रतिभा बिखेर रही हैं।

हिन्दी ग़ज़ल को परिभाषित करते हुए डॉ. कुँअर बेचैन लिखते हैं कि गजल रेगिस्तान के प्यासे होंठों पर उतरती हुई शीतल तरंग की उमंग है। गजल घने अंधकार में टहलती हुई चिंगारी है। ग़ज़ल नींद से पहले का सपना है। ग़ज़ल जागरण के बाद का उल्लास है। ग़ज़ल गुलाबी पाँखुरी के मंच पर बैठी हुई खुशबू का मौन स्पर्श है।

गोपाल दास नीरज के अनुसार ग़ज़ल न तो प्रकृति की कविता है न अध्यात्म की, वह हमारे उसी जीवन की कविता है, जिसे हम सचमुच जीते हैं।....."

इसीलिए यह निःसंकोच कहा जा सकता हैं कि ग़ज़ल को दिलकश संगीत में ढ़ालने वाले संगीतकार और उसे बेहतरीन ढंग से रसिकों के आगे पेश करने वाले कलाकार अगर नहीं होते तो ग़ज़ल यक़ीयन सिमट जाती। ग़ज़लों में कहीं–कहीं अच्छी फ़िक्र के शेर भी मिलते हैं, तो आसान शब्दों में कहे शेर भी। शिल्प पर भी इन ग़ज़लकारों की अच्छी–खासी पकड़ की झलक है। बहर के मैदान में भी हाथ साधते दिखते हैं तो कहीं एहसासों की जमींन पर अच्छी फस्ल भी उगाते हैं।

इसमें हिन्दी की प्रकृति और व्याकरण की सुरक्षा के साथ नवागत बिम्बों और प्रतीकों का विधान भी है। संग्रह की ग़ज़लों के रंग इन्द्रधनुषी हैं लेकिन सारी ग़ज़लों का मूल स्वर जीवन है और जीवन में घटनेवाली घटनाओं का चित्रण है। इससे प्रतीत होता है कि डॉ. चन्द्र त्रिखा ने अपनी ग़ज़लों में जिया है–

"दर्द की झीलें बदल गई हैं पथरीली चट्टानों पर
दिल तो वादा–माफ़ गवाह है इतनी बात न माने लोग।"

X X X

"जिन्दगी सर्द हकीकत है बुरा मत मानो
भोगकर देख तो लो दर्द का लम्हा कोई।"

X X X

"हो सके तो अब न लिखना दर्द का इतिहास कोई
उन लम्हों को पास रखना जिन लम्हों में रौशनी है।"

वर्तमान जीवन की विसंगतियों से लड़ने की ताकत हस्तीमल 'हस्ती' के हरेक शेर की आहट नए–नए दृश्य तलाश करती है, जिसमें भोर की पहली किरण के साथ हसीन उजालों की सुगबुगाहट मिलती है। साथ ही समाज पर संकट के बादल मँडरा रहे हों और चारों ओर दोहरे और छद्म मुखोटों का संसार हो तब रचनाकार का उत्तरदायित्व और भी बढ़ जाता है। जब संवेदना का भी निरंतर ह्रास हो रहा है, और सर्वत्र यह संस्कृति व्याप्त हो रही है, तो इसे अलग हटाकर नहीं वरन् इसके बीच से रास्ता निकालना होगा। ग़ज़ल के लिए यह समय चुनौतीपूर्ण अवश्य है, पर जीर्ण–शीर्ण अवस्था नहीं है। अपने सामाजिक सरोकारों को टटोलना और नए सिरे से अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता के मर्म और निहितार्थ को पुनः अन्वेषित और अर्जित करना होगा। यहाँ ग़ज़लकार अपनी ग़ज़लों के द्वारा आज के इस दौर के सिर्फ वाह्य अन्तर्विरोधों का ही नहीं, बल्कि आन्तरिक अन्तर्विरोधों को भी प्रकट किया है। ग़ज़लकार लगातार मूल्यों को क्षरित होते देख रहा है। जीवन इतनी तेजी से भाग रहा है, कि मूल्य पीछे छूटते जा रहे हैं, जीवन का वास्तविक सौन्दर्य समाप्त होता जा रहा है, कृत्रिमता हावी होती जा रही है। ऐसे में कवि चिंतित दिखते है कहते हैं।

"मिला दिया है पसीना भले ही मिट्टी में
हम अपनी आँख का पानी बचा के रखते हैं।"

X X X

"दोनों ही एक डाल के पक्षी की तरह थे
ये राम वो रसूल अभी कल की बात है।"

X X X

"सजा मुझको ही मिलनी थी हमेशा
मेरे चेहरे पे जो चेहरा नहीं था।"

जीवन में जटिलाएँ जितनी बढ़ती जा रही हैं शायरी के तेवर उतने ही तीखे होते जा रहे हैं। शायरी इंसान को जटिलताओं से डर कर भागना नहीं सिखाती बल्कि उससे सीधी मुठभेड़ के बाद जीतने के हुनर सिखाती है। डॉ. श्याम सखा 'श्याम' की ग़ज़लें किसी खास के लिए नहीं और न किसी विशिष्ट समुदाय के लिए हैं, बल्कि एक व्यापक लोक के लिए है। इनमें मानवीय संवेदना के क्षरण और जीवन की सहज गतिमानता को भीतर से सोख लेने वाला प्रत्येक दुश्चक्र की पहचान अभिव्यंजित हैं। भारतीय समाज व्यवस्था की असमानता पर आधारित जीवन की विषमताओं, विंसगतियों के बीच इनकी ग़ज़ल का जन्म हुआ है। यह सकारात्मक विद्रोह और संघर्ष की चेतना के साथ समाजिक बदलाव लिए प्रतिबद्ध है जो संभावनाओं को मुखर करती है तथा जीवन के प्रति चेतना का एहसास कराती है।

"जिन्दगी में हर खुशी हो ये जरूरी तो नहीं
ग़म जो कल था आज भी हो ये जरूरी तो नहीं।"

मानवीय रिश्ते शायरी का प्राण तत्व हैं। एक सशक्त ग़ज़लकार का यह दायित्व होता है कि वह समाज में फैले जटिलताओं को सहजता से बयां करे और ऐसा करने में ज्ञानप्रकाश विवेक सफल भी हुए हैं–

"ये कबीरा की चादर है यारों इसे आजमाना कभी
आपका जी करे तो इसे ओढ़ना या बिछाना कभी।"
"लोगों ने तो जतन किये छाया न किसी को दे अपनी
लोगों की बातों में लेकिन कब आया पीपल का पेड़।"

अनिरूद्ध सिन्हा की ग़ज़लों में नाजुक ख्याली भी हैं, मर्मस्पर्शिनी क्षमता भी और चट्टानी साहस भी। जनोन्मुखता और आम आदमी की विभिन्न दशाओं का वर्णन इनकी ग़ज़लों का केन्द्रीय कथ्य है। आम जीवन से जुड़ाव इनकी ग़ज़ल की विशिष्ट उपलब्धि है। मानव संवेदनाओं एवं चेतना को जागृति करने में इनकी ग़ज़ल ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। मानवतावादी चिन्तन को विशिष्ट स्थान मिला है–

"तहों में दलदल सतह पे साजिश
धुआँ–धुआँ–सा हरेक घर है।
झुकी हुई है हमारी गर्दन घरों में
रह के भी दिन में डर है।।"

X X X

"खून का दरिया बहाएगी सियासत कब तलक
कब तलक खुद को यहाँ लाचार देखा जाएगा।"

इन ग़ज़लों के स्वरूप और कथ्य में नवीनता, प्रखरता एवं विविधता का समावेश हुआ है तथा ग़ज़लकारों ने तमाम उन पहलुओं को छुआ है जो वर्षों से अछूते रहे हैं। ग़ज़लकारों तथा संपादक महोदय को हार्दिक बधाई। l ikn d&Mk0 d".k dekj i:tkifr@i:dk'kd&,uhcd] mMh lkA ek-& 9437044680

६. मैंने समुद्र से कहा

डॉ. सुदर्शन गासो अम्बाला छावनी, हरियाणा (पंजाब) का यह कविता संग्रह लोक जीवन की सच्चाई पर टिका हुआ है। इन्होंने अपने चारों ओर के समाज, परिवेश और देश, दुनिया में जो कुछ देखा और समझा–उसी को अपना काव्य–विषय बनाया। इसी कारण इनके कविता–संसार में इनकी अपनी नैसर्गिक सौंदर्य से भरी धरती और वहाँ की खुशबू समाहित है। जिस किसी भी रूप–रंग और रेखाओं में इनके चारों ओर पसरा हुआ सामाजिक स्वरूप है, इन्होंने उसे शब्दों में बांध दिया है। यही कारण है कि इनकी कविताओं का सच्चा और गहरा युग–बोध पूरी तरह प्रभावित करता है। इन्होंने अपनी चेतना को अपने समय के साथ जोड़े रखा है।

डॉ. गासो को कविता विरासत में मिली है। इनके पिता भी उत्कृष्ट कवि रहे हैं। जिस परिवेश में इनका बचपन रचा गया, वह सब जाने–अनजाने, चाहे–अनचाहे इनके कवि–कर्म में बुन दिया गया है। इनकी यथार्थवादी कविताओं की अभिव्यंजना में भाववादी दिशा, काव्य–संवेदना तथा कथ्य और शिल्प की उदात्तता देखने को मिलती है। इनके शब्द–चित्र यह सिद्ध करते हैं कि कवि के लिए पहले संवेदना होती है तब दर्शन का स्थान आता है। इनमें मानव से सहज स्नेह दिखाई देता है जो प्रेम का यह रस शुष्क दर्शन से नहीं उपजा है। इनकी कविताओं में मानव की बहुरंगी तस्वीरें मिलती हैं जो हरेक इंसान के प्रति गहरी आत्मीयता से उपजी हैं। कवि ने संपूर्ण संग्रह में एक आशावादी उद्देश्य को प्रमुखता देते हुए विपरीत परिस्थितियों में चिन्तित होने के बजाए उसके अनुकूल संघर्ष करने का प्रस्ताव दिया है। इन्होंने संघर्ष को एक मौलिक, सार्वभौमिक और सामाजिक प्रक्रिया माना हैं जो प्रत्येक समाज और काल में कम या अधिक मात्रा में है। व्यक्तियों और समूहों के बीच शारीरिक, भावनात्मक, सांस्कृतिक तथा व्यावहारिक संबंधों में जहाँ अन्तर पाये जाते हैं वहाँ ऐसे भेद–भाव ही संघर्ष को जन्म देते हैं। ऐसी परिस्थिति में इनकी कविता उल्लास का उद्‌गार तो है ही, सामाजिक जन–जीवन की कुटिलता, शोषण एवं विद्रूपता के प्रति संघर्ष का दस्तावेज भी है–

मैंने समुद्र से कहा/तू मेरा हौसला देखना/मैं कश्ती बनकर/तेरा मुकाबला करुँगा/अगर तू फिर भी जीत गया तो/ मैं तैर कर तुझे पार करुँगा/और अपने संघर्ष की/कहानी लिखूंगा/और भर दूंगा/अपनी कविताओं में जीत के रंग/ जालिम हवाएं जब तक/चलती रहेंगी/मेरी कविता की रोशनी/संघर्ष करती रहेगी/अंधेरे की बेवफाई के साथ।''

कवि यह देखकर आहत हो उठता है कि मानव से मानव का, जीवन में लाभ प्राप्त करने के लिए मूल्यों का गला घोंटा जा रहा है। आज असंतोष, अलगाव, असमानता, असामंजस्य, अराजकता, आदर्श विहीनता, अन्याय, अत्याचर, अपमान, असफलता, अवसाद, अस्थिरता, हिंसा हमारे समाज को घेरे हुए हैं। व्यक्ति एवं समाज में सांप्रदायिकता, जातीयता, भाषावाद, क्षेत्रीयता, संकीर्णता तथा कुत्सित भावनाओं के मूल में मनुष्य के नैतिक मूल्यों का क्षरण एवं अवमूल्यन है। एक समय था मानव मूल्यों के लिए एक दूसरे का द्वार खुला मिलता था, लेकिन सांस्कृतिक अवमूल्यन ने उसे बंद कर रखा है–

''शुरू में तो नहीं थे बंद रास्ते/कुछ चुनिंदा चंद लोगों ने/खुशियों का सोना और/सुख की चांदी भरनी शुरू की/अपनी तिजौरी में और कर दिए बहुत सारे लोगों के लिए बंद/जीने के रास्ते।''

भैतिकवादी युग में इनकी कविता का उद्देश्य सदैव बनते–टूटते संबंधों और मूल्यों की परतों को खोलना रहा है। इन्होंने आत्मीयता को अनदेखा करते बड़े करीब से देखा, गहराई से समझा और उसे महसूस किया है। प्रेम, विश्वास, संवेदना, अपनापन आदि होने से मानवीय संबंध बनते और न होने से टूटते हैं। इनका यह संग्रह मानवीय मूल्यों की पक्षधरता की गवाही देता है। कवि युग के कड़वे सच को जितना ही देखता है संघर्ष को मनुष्यता के पक्ष में उतना ही खुलासा करता है–

''इतना बढ़ गया है शोर/कि चिड़िया का गीत/कोई भी सुन नहीं पा रहा/अगर शोर इसी तरह से/बढ़ता रहा तो/भूल जाएगी चिड़िया/गीत गाना, मुस्कुराना।''

कवि जीवन को समग्रता में ग्रहण और धारण करना चाहते हैं। समकालीन जीवन स्थितियों के प्रति इनमें गहरा असंतोष है। ये समाज को बेहतर बनाना चाहते हैं। मनुष्य के भीतर और बाहर दोनों ही स्तरों पर बदलना चाहते हैं। ये आधुनिक भाव बोध को नई कविता की आत्मा मानते हैं। मानवता के भविष्य निर्माण के संघर्ष में दत्तचित्त हैं। उत्पीड़ित मानव के साथ एकात्म होकर उसकी मुक्ति चाहते हैं। कविता में इनके बिम्ब मौलिक और सटीक होते हैं। संवेदना के सभी आयामों में इनकी कलात्मकता देखी जा सकती है। इनके निहितार्थ जितना ही विचार किया जाता है, पृष्ठ–दर–पृष्ठ आह्लाद और रंग–रस की सृष्टि विकसित होते जाती है, जिसकी सारी संवेदनाएँ कवि के सर्जक व्यक्तित्व को समृद्ध करती हैं–

''खूबसूरत बनना है/तो हवा बन जा/महक बनना है/तो फूल बन/जा खुदा बनना है/तो कायनात बन जा/रोशनी बनना है/तो किरण बन जा/प्यार करना है/तो सपना बन जा/महान बनना है/तो माँ बन जा।''

अपनी कविताओं में ये आमजन की पीड़ा के अधिक नजदीक हैं। सामान्य जन की व्यथा और संघर्ष का चित्रण इन्हें साम्यवादी व्यवस्था की ओर ले आता है। समसामयिक विषयों पर भी अपनी चिन्ता जाहिर की है। स्त्री विमर्श में सामाजिक विकृति को देखकर इनका मन बेचैन हो उठता है। आज स्त्रियाँ देश में पूरी तरह सुरक्षित नहीं हैं। ऐसे में इनकी सामाजिक परिप्रेक्ष्य की संवेदना भी द्रवित कर जाती है–

''इस खूबसूरत जिंदगी में
मुझे कोई दुःख नहीं
लेकिन एक दुःख जरूर रहेगा
कि मैं अपनी चाँद जैसी बेटी
मलाला को क्यों न बचा पाया।''

कविताओं में ताजगी तथा कमनीयता भी मुखरित है–

''मन में एक तमन्ना रहती है
कि तेरे होठों की बाँसुरी पर
एक गीत बन कर
तेरे तन मन के
बाग को महका दूँ।''

कवि डॉ. सुदर्शन गासो कविता को अपने भीतर रोपा और उसे बढ़ते, फूलते–फूलते महसूस किया है तथा मीठे फल–फूल उगा कर हम पाठकों को चखने और आनन्द लेने का जो मौका दिया है, मैं उसके लिए सादर धन्यवाद करता हूँ।

प्रकाशक–चेतना प्रकाशन, पंजाबी भवन, लुधियाना, मो0–9896201036

७. आनन्द मंजरी : मुकरी संग्रह

त्रिलोक सिंह ठकुरेला, आबू रोड, राजस्थान द्वारा रचित "आनन्द मंजरी", इनका प्रथम मुकरी–संग्रह है। मुकरियाँ पहेलियों का ही एक मनोरंजक रूप है। इनका उद्देश्य बुद्धि–चातुर्य की परीक्षा लेना होता है। प्रस्तुत संग्रह में कुल एक सौ एक मुकरियों का संकलन है। इन सभी मुकरियों का उत्तर 'साजन' होने का भ्रम से होता है, पर नायिका बड़ी चतुराई से उनके उत्तर देती हैं। इससे पाठक के मन में कौतूहल होता है। इसके शिल्प–विधान को देखें, तो शब्दों में मात्रिक व्यवस्था के साथ–साथ प्रथम दो पंक्तियाँ सोलह मात्राओं की होती हैं। यानि, प्रथम दो पंक्तियाँ गेयता को निभाती हुई शाब्दिकतः सोलह मात्राओं का निर्वहन करती हैं। तीसरी पंक्ति वस्तुतः बुझवायी हुई वस्तु या संज्ञा पर निर्भर करती है। फिर, चौथी पंक्ति दो भागों में विभक्त हो जाती है, चौथी पंक्ति के दूसरे वाक्य में आये निर्णायक उत्तर से भ्रम या संदेह का निवारण होता है। प्रथम तीन पद के माध्यम से साजन, प्रियतम या पति के विभिन्न रूप परिलक्षित होते हैं। चौथी पंक्ति का प्रथम भाग ऐसा ही कुछ समझने को कहता और प्रश्न भी करता है। परन्तु उसी पंक्ति का दूसरा भाग न सिर्फ उस बूझने का खण्डन करता है, अपितु कुछ और ही उत्तर देता है जो कि कवि का वास्तविक इशारा है। मुकरियों या कह–मुकरियों का प्रारम्भ, पहेलियों की तरह ही, अमीर खुसरो से माना जाता है। उसी परंपरा को आगे बढ़ाते हुए भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी ने अपने समय में इन पर बहुत काम किया।

इसके बाद क्रमशः छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और आज यानि नई कविता के दौर आए, पर इन दौर के किसी भी रचनाकार का ध्यान कह–मुकरी की तरफ नहीं गया। आज के इस दौर में जब अतुकांत और मुक्तछंद कविता अपने चरम पर है, कह–मुकरी की बात करना अपने आप में अलग प्रतीत होने वाला विषय हो गया है। यदि इस अलग प्रतीत होने वाले विषय पर अगर थोड़ा सा विचार करें तो इसमें काफी कुछ अर्थपूर्ण साहित्यानुभूति छिपी मिलती है।

वर्षों बाद इस कृति को डॉ. बहादुर मिश्र ने आगे बढ़ाते हुए एक अभिनव प्रयोग किया। क्रमशः अब तो विभिन्न रचनाकारों में इसकी अभिरुचि जगी और आज त्रिलोक सिंह ठकुरेला की "आनन्द मंजरी" पढ़ने को मिली। इन्होंने इनके माध्यम से हास्य, तीखें व्यंग्य, दर्शन आदि के साथ–साथ वर्त्तमान सामाजिक–राजनैतिक, प्राकृतिक, जीव–जगत, स्त्री के शृंगार और परिधान से संबंधित तथा रसोई और खान–पान संबंधित घटनाओं पर भी लिख कर बेतहर प्रयोग किया है। इन्होंने जो प्रमुख विषयों को आधार बनाकर मुकरियाँ रची हैं, वो इस प्रकार हैं–कहीं डंडा, मोबाइल, कम्प्यूटर, हीटर, तोता, चंदा, ताला, माला, झुमका, मच्छर, दर्पण, साड़ी, सोना, भौर, पैसा, उल्लू, हाथी, सपना, सावन आदि तो कहीं चंदा, तारा, फुलवारी, सावन, सवेरा, चातक जाड़ा, महंगाई इत्यादि।

"दिन में घर के बाहर भाता
किन्तु शाम को घर में लाता
कभी पिलाता तुलसी काढ़ा
क्या सखी, साजन?ना सखी, जाड़ा।"

"द्वारे आकर नित्य पुकारे
मैं भी दौड़ी आऊँ द्वारे
प्रेम–पयोधर, परम् वियोगी
क्या सखी, साजन?ना सखी, जोगी।"

इनकी मुकरियों का मूल उद्देश्य बुद्धि विकास के साथ–साथ मनोरंजन करना तथा अपनी बात को रचनात्मक रूप से कहकर श्रोता या पाठक के बुद्धि चातुर्य को जागृत करना है। इसमें दो अंतरंग सहेलियों का संवाद है। प्राकृतिक विषयों को आधार बनाकर लिखी गई इनकी मुकरियाँ वसंत में होली पर अपनी अभिव्यक्ति इस प्रकार दी हैं–

"वह आये तो तन मन हरषे
चारों ओर रंग रस बरसे
सबको भाती हंसी ठिठोली
क्या सखी, जोकर?ना सखी, होली।"

मनुष्य संवेदनशील एवं चेतना सम्पन्न प्राणी है। इसका मन प्रकृति में प्रतिफल होने वाले सौम्य, मनोरम एवं विकराल परिवर्तनों से भी भाव ग्रहण करता है, आस–पास होने वाले दुःख–सुःख, आशा–निराशा, प्रेम–घृणा, दया– क्रोध से चलायमान रहता है। मनुष्य की इसी प्रवृति की प्रेरणा से ज्ञान एवं आनन्द के उस भंडार का सृजन, संचय एवं संवर्धन होता रहा है, जिसे सहित्य का ही एक अंग के रूप में भावावेशमयी अवस्था के इस स्वर साधना को मुकरियों के रूप में दर्शाया गया है। यह प्रणाली बड़ी ही आकर्षक एवं उपयोगी है। इसे खेल–खेल में बोलकर बहुत सारी उपयोगी बातें सीख सकते हैं। यह विधि मनोवैज्ञानिक है लेकिन यह सरल एवं आकर्षक होना चाहिए। यह अर्थ को भी समझाती है, भावानुभूति तथा रसानुभूति भी कराती है। इसके कला पक्ष में शब्द योजना–प्रतीकात्मक, ध्वन्यात्मक, लाक्षणिक तथा शैली और कल्पना आदि मुख्य रूप से सौन्दर्यग्राही ही है। काव्य में रुचि उत्पन्न करने के लिए हम इन विधाओं को अपना सकते हैं। इसका मानव–मन व हृदय पर सीधा प्रभाव पड़ता है तथा यह मानव मन को झंकृत करती है। इसके द्वारा सामाजिक, ऐतिहासिक, पौराणिक व नैतिकता के बारे में भी सीख सकते हैं। चिंतन की अपेक्षा इसमें भावनाओं की भी प्रधानता रहती है जो सौन्दर्य की अनुभूति द्वारा आनन्द की प्राप्ति कराती है। दृश्य जगत के सत्य को कवि सुन्दर और मंगलकारी बनाकर इसके माध्यम से सहृद तक प्रेषित करता है। कवि का अभिप्रेत अर्थ मुख्यार्थ तक ही सीमित नहीं रहता। इसका आनन्द लेने के लिए लक्ष्यों के लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ तक पहुँचना आवश्यक होता है। कवि प्रायः अपने भावों को प्रकट करने के लिए चित्रात्मक भाषा का प्रयोग करता है, वही पाठक के मन में शब्दों के द्वारा ऐसे बिम्ब बनाता है, जिनसे कवि का कथ्य प्रभावपूर्ण ढंग से हृदयंगम हो जाता है। चित्रात्मक भाषा के प्रयोग से थोड़े शब्दों में बहुत बात कही जा सकती है और उसका प्रभाव भी अधिक गहरा होता है।

इसप्रकार इनकी मुकरियों में पाठक को बाँधने की सामर्थ्य है। अनेकरसता और थकान को दूर करने तथा मौसमी लोकगीत गाने के साथ–साथ एक दूसरे से छेड़–छाड़ करते हुए प्रश्नोत्तरी गायन की शैली विकसित है।

i:dk'kd&ek0&9460714267

८. सत्यम् शिवम् सुंदरम्

डॉ0 जर्नादन यादव, नरपतगंज, अररिया (बिहार) द्वारा रचित यह "शोध संग्रह" साहित्य सृष्टि के सत्य का उद्घाटन करता है और मनुष्य की संवेदनशीलता तथा उसकी रागात्मकता से उत्पन्न हक़ीकत से जोड़ता है जो आवश्यक दक्षताओं को समृद्ध करता है, जिसकी हमें दैनिक जीवन में आवश्यकता होती है। साहित्य हमारे रेगिस्तान बने जीवन को अपनी शीतल फुहार से आध्यात्मिक और संस्कृति रूपी आह्लाद और आनन्द प्रदान करता है, जिससे जीवन की सौंदर्यता निखरती है तथा खुशियाँ आती हैं। अतएव साहित्य मनुष्य में निहित उन सभी प्रवृत्तियों का प्रतिबिम्ब है जिसमें सत्य का, शिव का और सौंदर्य का दर्शन होता है एवं उच्चतर प्रतिष्ठा और आंनद की ओर प्रेरित करता है।

भारतीय वाड्.गमय, संस्कृति और भारतीयता के गम्भीर अध्येता डॉ0 जनार्दन ने इस संग्रह के माध्यम से सभ्यता और संस्कृति के इस विचलन भरे समय में एक बार फिर यह सोचने को विवश कर दिया है कि साहित्य वही है जिसमें सौन्दर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, जीवन की सच्चाईयों का प्रकाश हो–जो हममें गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करने की क्षमता प्रदान करे। हमारी संस्कृति ऐसे सिद्धांतों पर आश्रित है जो प्राचीन होते हुए भी नई है। यह सिद्धांत किसी देश या जाति के लिये नहीं अपितु समस्त मानव जाति के कल्याण के लिये है। इस दृष्टि से भारतीय संस्कृति को सच्चे अर्थ में मानव संस्कृति कहा जा सकता है। इस संग्रह में 29 ऐसे निबंध हैं जो मानवता के सिद्धांतों पर स्थित होने के कारण तमाम आघातों के बावजूद भी अपनी संस्कृति के अस्तित्व को विभिन्न रूपों में सुरक्षित रखे हैं, जिसमें 'भारत, भारतीयता और भारत माता', 'आनन्दमठ और वन्देमातरम् का सामर्थ्य', 'श्रीमद्भगवद् गीता यथारूप में निहित सन्देश', 'भारतीय साहित्य में नारी', 'वैदिक शास्त्रों में शुद्र और स्त्रियाँ', 'भारतीय शास्त्रों में कुंभ की विवेचना', 'साहित्य एकात्मकता का उद्गम स्रोत : संस्कृत भाषा', 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्', 'आगम और निगम', 'नर्मदा और भारतीय संस्कृति', 'वैदिक नदी सरस्वती', 'आर्य और आर्यावर्त', 'संस्कृति : एक विश्लेषण' आदि हैं। इसमें भारतीय संस्कृति और साहित्य के अनेक विषय समायोजित हैं। सर्वाधिक प्रसिद्ध वैदिक देवता इंद्र एवं शनि के साथ ही इतिहास और पुरातत्व से सम्बंधित कैलाश एवं अलकापुरी, रामगिरि और चित्रकूट, आर्य और आर्यावर्त पर अपेक्षित सारगर्भित विस्तृत चर्चाएं हैं।

भारतीय संस्कृति का सर्वाधिक व्यवस्थित रूप हमें सर्वप्रथम वैदिक युग में प्राप्त होता है। वेद विश्व के प्राचीनतम ग्रंथ माने जाते हैं। प्रारम्भ से ही भारतीय संस्कृति अत्यंत उदात्त, समन्वयवादी, सशक्त एवं जीवंत रही हैं, जिसमें जीवन के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा आध्यात्मिक प्रवृत्ति का अद्भुत समन्वय पाया जाता है। शास्त्रों के अनुसार वैदिक काल में अनेक शुद्र ने भी अपनी तपस्या सुर ज्ञान के द्वारा ब्राह्मणत्व को प्राप्त किया है, यह हमारी संस्कृति रही है; जैसे–दीर्घतमा, मामतेय, वत्स काण्वायन, महिदास ऐतरेय, औषिज, काक्षीवन्त, सुदक्षिण क्षैमी, ब्रह्मावेत्ता रैक, कवष, ऐलूष आदि। लेखक का कहना है कि.. "गंगा के प्रदूषित हो जाने का अर्थ यह नहीं कि वह अछूत हो गई। उसी प्रकार शूद्रों के पिछड़ेपन का यह अर्थ नहीं कि वे अछूत हो गए। आज के समय में जितना पुण्य गंगा की सफाई के लिए सहयोग करने में है, उससे भी कुछ अधिक पुण्य है पिछड़े लोगों के ऊपर उठाने में। वाल्मीकि, ऋषि सत्यकाम जाबालि, कणाद, महाभारत के रचयिता मछुआरिन के पुत्र वेदव्यास तथा एतरेयोपनिषद् के रचयिता ऐतरेय ऋषि शुद्र थे पर ये सभी अपने कर्म और ज्ञान से ब्राह्मणत्व को प्राप्त किए।" ऐसे में अगर वशिष्ठ, वेदव्यास, वाल्मीकि आदि ऋषियों को सनातन धर्म से निकाल दिया जाय, तो सनातन धर्म बिना नींव के मकान की तरह ढ़ह जाएगा। इतना ही नहीं भारतीय वाड्.गमय में वर्णित पंच तत्वों की संस्कृति को देखें, तो भगवान और अल्लाह में समान रूप से विद्यमान है ऐसा लेखक की अभिव्यक्ति है – "भ–भूमि, ग–गगन, व–वायु, आ–अग्नि, न–नीर (पानी)। अल्लाह (अलइलहअ)–आ–आब(पानी), ल–लाब(भूमि), इ–इला(वायु), ल्अ–आसमान (गगन), ह–हरक(अग्नि)। ठीक इसी प्रकार इन्होंने इन पंच तत्वों के ठहराव को हाथ की उँगलियों में दर्शाया है– अंगूठा–सूर्य (अग्नि), तर्जनी–पवन (वायु), मध्यमा–आकाश, अनामिका–पृथ्वी, कनिष्ठिका–पानी। इस प्रकार के अनेक उदाहरणों को इस पुस्तक में प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत करने का बहुत अधिक प्रयास किया गया है।

भारतीय विचारक आदिकाल से ही संपूर्ण विश्व को एक परिवार के रूप में मानते रहे हैं इसका कारण उनका उदार दृष्टिकोण है। हमारे विचारकों की 'उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुंबकम्' के सिद्धांत में गहरी आस्था रही है। वस्तुतः शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियों का विकास ही संस्कृति की कसौटी है। इस कसौटी पर भारतीय संस्कृति पूर्ण रूप से उतरती है। संस्कृति किसी भी देश, जाति और समुदाय की आत्मा होती है। संस्कृति से ही देश, जाति या समुदाय के उन समस्त संस्कारों का बोध होता है जिनके सहारे वह अपने आदर्शों, जीवन मूल्यों, आदि का निर्धारण करता है। जीने की कला हो, विज्ञान हो या राजनीति का क्षेत्र भारतीय संस्कृति का सदैव विशेष स्थान रहा है। अन्य देशों की संस्कृतियाँ तो समय की धारा के साथ–साथ नष्ट होती रही हैं किंतु भारत की संस्कृति व सभ्यता आदिकाल से ही अपने परंपरागत अस्तित्व के साथ अज़र–अमर बनी हुई है। इनके इस ग्रन्थ में सर्वत्र सत्यम् शिवम् एवं सुन्दरम् का चिंतन मुख़रित है। निबंध में संक्षिप्तता, एकसूत्रता एवं सम्पूर्णता जैसे गुण विद्यमान हैं। कथ्य तर्कपूर्ण ढंग से उदाहरणों के साथ प्रस्तुत हैं। भाषा सहज, सरल, सरस, आडम्बरहीन, प्रवाहपूर्ण, काव्यात्मक एवं संवेदनात्मक हैं। व्यवस्थित रूपरेखा में प्रस्तुत इस शोधसंग्रह के लिए लेखक को हार्दिक बधाई एवं मेरी अशेष शुभकामनाएं।

प्रकाशन–समीक्षा प्रकाशन, दिल्ली / मुजफ्फरपुर
मो0–9939216504

९. दरबान ऊँघते खड़े रहे

सूर्य प्रकाश मिश्र, बभनौली, बलिया, (उत्तर प्रदेश) द्वारा रचित काव्य संग्रह "दरबान ऊँघते खड़े रहे" में अपनी अनुभूतियों को परिवेश तथा परिस्थितियों की यथार्थवादिता के साथ चुनौती के रूप में पाठक के सामने प्रस्तुत करते हैं, जिससे जन–साधारण भी कविमन की अतिशय संवेदनशील उन चुनौतियों को समझ सके, जान सके। वैसे भी कविता देश, समाज और व्यक्ति के लिए आईना होती है। 89 कविताओं से सुसज्जित यह संग्रह सामाजिक असंतुलन, विसंगतिपूर्ण सामाजिक ढाँचा, विडम्बनाओं, रूढ़ियों, प्रपंचों और व्यवस्थाओं से संघर्ष करने के लिए वातावरण में व्याप्त विसंगतियों, विद्रूपताओं को दूर करने के लिए तथा नये मूल्यों एवं नये समाज की स्थापना के लिए एक दस्तावेज है। संग्रह की पहली कविता "सोने का मृग" है, जिसकी पहली पंक्ति ही हमें सावधान करती है....

"मिथ्या होता सोने का मृग, ये बड़ी विलक्षण माया है।"

आगे इनकी कविता "कब तक" है, जिसकी पंक्ति है...

"असह्य हो चला क्लेश
जहाँ महकती थीं उम्मीदें
वहाँ फूलता द्वेष।"

काव्य को पढ़कर ऐसा लगता है वर्तमान में सामाजिक एवं प्राकृतिक बदलाव को कवि ने काफी निकटता से अनुभव किया है। आज समाज का वातावरण पर्यावरण की तरह ही प्रदूषित है, भीतर और बाहर आदमी के लिए घुटन भी है और चुभन भी। इन्होंने अपनी कविताओं में एक–एक शब्दों को, भावों को, अनुभूतियों को मोतियों की तरह अत्यंत सहजता से पिरोया है। इनकी व्यंग्यात्मक कविता "सरकारी अस्पताल" है जिसमें, समाज में व्याप्त उन विसंगतियों, विषमताओं एवं विद्रूपताओं की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है जो मानवीय आचरण के विकारों अथवा मनोविकारों से उत्पन्न होते हैं। व्यंग लेखन एक ऐसी साहित्यिक कला है जो रोचक, आकर्षक होने के साथ मनोचेतना पर प्रहार भी करती है। इनकी पंक्ति है....

"एक रुपइये की रसीद पर
रजिस्टर्ड हैं ढेरों रोगी
डॉक्टर साहब हाँफ रहे हैं
कब ओपीडी ओवर होगी।"

किसी भी रचना के मूल्यांकन में यदि अन्तर्विरोधों की पहचान आसानी से कर ली जाय तो आधी समस्या यहीं खत्म हो जाती है। व्यंग्य के अन्तर्विरोधों को देख पाना भी उसी व्यक्ति के लिए आसान होता है, जिसका व्यंग्य के ऐतिहासिक विकास क्रम पर दृढ़ विश्वास हो, जिसे अपने समाज का इतिहास, वर्तमान की संचालक शक्ति का ज्ञान हो, भविष्य का अपना कोई दृष्टिकोण हो' तभी वह व्यंग्य के वाह्य और भीतरी अवयवों की पहचान तथा व्यंग्य के मारक क्षमताओं को रेखांकित कर पाता है। आगे भी कवि की पंक्ति समकालीन व्यक्तिगत अनुभववादी और यथार्थवादी व्यंग्य के रूप में आ रही है। कवि जैसा समाज देख रहा है और अनुभव कर रहा है उस पृष्ठभूमि को अपनी कविता में प्रयोग कर रहा है

हाकिम आये मुआयने पर
रस्ता कब से खुदा परा है
मेठ बड़ा चलता–पुरजा है
तय कर लेता हर लफ़ड़ा है
एक फोन से ढ़क जायेगा
चाहे जितना बड़ा छेद है।

काव्य–सृजन में रचनाकार के काव्यगत और रचनात्मक रूप में उनका अभिव्यक्तिकरण महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। रचनाकार अपने अनुभवों द्वारा जीवन उद्देश्यों को काव्य रूप देकर संप्रेषणीय आधार प्रदान करता है और यह सृजनात्मक विचारशीलता से सिद्ध होता है। इनका व्यंग्य "चाँद की रोटी" में जीवन से साक्षात्कार कराता है–

"इन बेबस आँखों की तुम भाषा पढ़ पाते
काश उतरकर सचमुच की रोटी बन जाते
लोग छीनते हैं जाने कितनों की रोटी
लाख चाहने पर भी तुमको छीन न पाते।
कितने सपने तैर रहे मन के आँगन में
रोटी जैसी चाँद पड़ें हो किस उलझन में।"

इनकी कविताएँ देश, समाज, परिवार और दिलों के फ़ासलों को मिटाती हैं और नई ऊर्जा का संचार करती हैं, जीवन की कोमलता और विडंबनाएं साझा रूप में अभिव्यक्त करती हैं तथा जीवन की सच्चाईयों को रेखांकित करती हैं। ऐसा भी देखा गया है कि शिल्पगत प्रयोगों को अत्यधिक रूप देकर रेखांकित कर दिया जाता है, जिसके चलते विषय–वस्तु और विचार पक्ष जाने–अनजाने समाप्त हो जाती है। लेकिन कवि सूर्य प्रकाश मिश्र ने यथार्थवादी चुनौतियों का मूल्यांकन कविता 'गाँव' के रूप में एक बड़ी समस्या के मानवीय समाधान को हमारे सामने लाया है–

"अब कहाँ चौपाल लगती गाँव में
अब नहीं गाती हैं माँयें लोरियाँ
अब नहीं हैं गूँजती कजरी की धून
झूलती झूला नहीं अब छोरियाँ
बस गई जिन्दादिली परदेश में
आज सावन भी बना मेहमान।
राम जाने कौन सा ये दौर है
मुस्कुराना भी हुआ एहसान।।"

इनकी रचना व्यक्ति सापेक्ष नहीं बल्कि काल सापेक्ष से सम्पूर्णता की तरफ हमेशा आगे बढ़ती है। इन्होंने शिल्प के रूप में जो प्रतीकों का प्रयोग किया है वह इनकी शैली को मजबूती है। इनकी रचना कब भाववादी बन जाती है और कब यथार्थवादी यह कविता की गहराई में जाने पर उसकी ताकत महसूस होती है, जिसमें मनुष्यता को बचाने की आस्था विद्यमान रहती है। रचना में विचार तत्व हमेशा मौजूद रहता है। इनकी कविता 'कुत्तू लाल' की यथार्थता को देख सकते हैं–

"सड़क सो गई, लेकिन कुत्तू लाल जगा है
पहरे पर है, बस्ती का कोतवाल जगा है
पैदा हुआ कहाँ पे, जाने कहाँ से या
इस बस्ती का प्रहरी किसने इसे बनाया
अन्जाना सा नाम, मगर मशहूर हो गया
सुना जरा सा, फर्राटे से दौड़ के आया
घृणा, प्यार को मन से, परे निकाल जगा है
सड़क सो गई, लेकिन कुत्तू लाल जगा है।"

पूरे काव्य संग्रह में सरसता, स्वाभाविकता, सजीवता के गुण एक साथ मिलते हैं। कठिन शब्दों से बचा गया है। भाषा में प्रवाह है। इसकी सफलता हेतु मेरी हार्दिक शुभकामनाएं हैं।

मो0–9839888743,संस्कृति प्रकाशन,साकेत नगर,वाराणसी, उ0प्र0

१०. स्वयं सिद्धा

शुभदा मिश्रा, डोंगरगढ़, राजनांदगांव, (छत्तीसगढ़) जिन्होंने अपना उपन्यास 'स्वयं सिद्धा' में नारी पात्रों के द्वारा शिक्षा और आत्मनिर्भरता की हिमायत की हैं। समाज में व्याप्त हर समस्या के सामने इनकी नायिका पुनीता अपने पूरे अस्तित्व के साथ संघर्ष करती हैं समाधान भी पाती हैं तथा बहुत ही शालीन भाव से प्रत्येक भूमिका में अपना स्थान प्रस्थापित करती हैं। अपने व्यक्तित्व की चेतना जगाती हैं। अपने उपन्यास में इन्होंने मनोवैज्ञानिक, व्यष्टि में समष्टि, पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक क्षेत्र में नारी के योगदान, उसकी समस्या और उसके संघर्ष को चित्रित किया है। जब नारी अपने कामिनी भाव का त्याग कर देगी, स्त्री–पुरुष में सहज मैत्री–भाव रहेगा, अधिकारों के साथ कर्तव्य पालन करने की दृढ़ इच्छा होगी तो उत्पीड़न से नारी मुक्ति पाएँगी। उसके अधिकार न भिक्षावृत्ति से मिली हैं न मिलेंगी ही, क्योंकि यह आदान–प्रदान की वस्तु से भिन्न है। पारिवारिक पृष्ठभूमि पर आधारित अपनी इस कृति में इन्होंने अमानुषिक यातनाएँ झेलती, मुक्ति के लिए संघर्ष करती नारी की घनीभूत पीड़ा को उकेरने का जो प्रयास की है, वह अमूल्य है। पुरूष एवं स्त्री का यह समन्वय केवल सुशिक्षा की नींव पर ही अवलम्बित रहा है। आज का जन–समाज अतीत के उस समन्वय के पीछे छिपे हुए अटूट अनुराग–सूत्र का अनुमान नहीं करता है, वरन् उसे पुरुष कठोर शासन व्यवस्था जैसे शब्दों से अभिभूत करता है। यही कारण है कि आज तक हमारा यह भ्रम बना ही रहा कि नारी सदियों से पराधीन की श्रृंखलाओं में जकड़ी हुई एक पुतली–मात्र है, जो गृह–व्यस्थाओं को सँभालती हुई पुरुष की वासनाओं की तृप्ति करने वाली है। नारी के उस गौरवपूर्ण एवं महिमामय रूप को हम भूल जाते हैं, जो अतीत में कुशल गृहिणी, कुशल जननी एवं आदर्श पत्नी के रूप में रहती चली आई है।

उपन्यास हिन्दी साहित्य की एक लोकप्रिय विधा है। इसके माध्यम से मानव–चरित्र का चित्र उभरकर सामने आता है। प्रेमचंद के द्वारा पूर्व हिन्दी उपन्यासों के प्रथम चरण में लिखे गए उपन्यासों का प्रधान उद्देश्य मनोरंजन एवं समाज सुधार ही रहा है। भले ही उपन्यास कला की दृष्टि से इस काल में उल्लेखनीय न हों, किंतु इनका 'स्वयं सिद्धा' उपन्यास में उत्कर्ष को छूने का प्रयास है, जीवन परिवर्तन को तराशने की पहल है, जीवन में मानवीय मूल्य की ओर देखने का नया नजरिया विकसित है, कथ्य, भाषा, शैली और शिल्प की दृष्टि से नये आयाम उद्घाटित किये गए हैं। इनके लेखन में अनुभूतिजन्य यथार्थतता की कसमसाहट मिलती है। इसमें संघर्षशीलता, बदलते सन्दर्भ, टूटन, सांस्कृतिक परिवर्तन, नई मानसिकता, आक्रोश, व्यवस्थागत विसंगतियों, शोषण, कुरीतियां तथा चरमराता पारिवारिक ढांचा आदि विवेचन हुआ है। इस प्रकार यह समकालीन संकट बोध से चिंतित एक महत्त्वपूर्ण उपादान है। जब कभी एक समाज में अन्तर्क्रियाओं का व्यवस्थित क्रम टूट जाता है तथा सामाजिक व्यवस्था प्रभावपूर्ण रूप से व्यक्तिगत तथा सामूहिक जीवन को नियंत्रित नहीं कर पाती, तब समाज में विघटन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। सामाजिक विघटन मानव संबंधों के प्रतिमानों तथा प्रक्रमों में पड़नेवाली वाधा है। इसका तात्पर्य व्यक्तियों के बीच कार्यात्मक संबंधो का इस सीमा तक टूट जाना है, जिससे संपूर्ण समूह में अव्यवस्था तथा भ्रम उत्पन्न हो जाता है। अव्यवस्था का तात्पर्य विभिन्न परिवारों, समाज तथा समूहों के बीच असंतुलन उत्पन्न हो जाना तथा भ्रम का अर्थ समूह के सदस्यों की पारस्परिक अविश्वास का बढ़ जाना है। इस प्रकार सामाजिक या पारिवारिक विघटन की दशा में व्यक्ति अपने कर्त्तव्य भूल जाते हैं, सामाजिक नियमों का नियंत्रण कम होने लगता है, समाज के विभिन्न अंगों का संतुलन ढ़ीले पड़ने लगता है, सामाजिक आदर्श गिरने लगते हैं और सम्पूर्ण सामाजिक ढ़ाँचा अस्त–व्यस्त होने लगता है। इसके अतिरिक्त भी लेखिका शुभदा मिश्रा ने सांस्कृतिक संपर्क टूट जाने तथा संस्कृति के विभिन्न पक्षों के बीच उत्पन्न होने वाले असंतुलन को पारिवारिक या सामाजिक विघटन के रूप में व्यक्त किया है।

इनकी नायिका पुनीता माता–पिता की खुशी के लिए विवाह के आकर्षण में फंस तो जाती है, लेकिन ससुराल में उन्हें अपमान का घूँट पीना पड़ता है। वहाँ नैतिक मूल्यों की कोई जगह नहीं है। ससुर परवश हैं, देवर अपाहिज, सास, ननद लन्द–फंद में माहिर, बद्जुबान एवं आक्रामक हैं। संकुचित स्वभाव के पति कलुषित चरित्र से उद्भ्रांत पत्नी को ही कुलटा साबित करने वाले दम्भी स्वभाव के हैं। इन सबों के कुचक्र में फंसी प्रताड़ना झेलती, आरोप सहती, गालियां सुनती तथा ज़ख्मों से जर्जर पुनीता पारिवारिक मान–अपमान में उलझी जीवन की जिजीविषा बनाए रखने वाली आत्मबल को जगाती है। फिर, उन आततायियों पर दया कर शांत हो जाती है। किन्तु सास (माँ) के चरित्र का कुत्सित पक्ष जब उजागर होता है तो पति की संवेदना जग जाती है, वे टूट जाते हैं तब पत्नी ही पूरे घर को सम्भालती है। परिवार में फिर पुनीता का कद बढ़ जाता है जो उन कुचक्रकर्मियों को बर्दाश्त नहीं हुआ, वे सभी प्रतिहिंसा की आग में जलने लगे और षडयंत्र रचने लगे। अंत में पुनीता उन कुचक्रों को भेदकर खुली हवा में सांस लेने अपनी मंज़िल की ओर निकल पड़ती है। समाज में सकारात्मक परिवर्तन की संभावना जगाती है।

नैयक्तिक विघटन का स्वरूप अधिक आधारभूत है। इस दशा में व्यक्ति आंतरिक या वाह्य दशाओं के कारण अपनी विभिन्न परिस्थितियों से अभियोजन नहीं कर पाता और इसके फलस्वरूप सामाजिक मूल्यों के विरूद्ध व्यवहार करने लगता है और तब परिवार में अनैतिक वातावरण, आकस्मिक विपत्तियाँ, शारीरिक उत्पीड़न, सदस्यों में मतभेद, पारिवारिक तनाव, परित्याग, विवाह विच्छेद, अनुशासनहीनता तथा विघटन होने लगते हैं, जिसका कुप्रभाव समाज पर पड़ता है और इससे धर्म, नैतिकता, चरित्र, मनोरंजन, शिष्टाचार, कला की नाटुकारिता आदि अनेक समस्याएँ आती हैं जो सांस्कृतिक विघटन के बढ़ते हुए प्रभाव को स्पष्ट करती है।

संस्कृति मानव द्वारा निर्मित एक अनूठा अविष्कार है जो मानव–जीवन के सम्पूर्ण क्रियाकलापों का दर्पण में शुभदा जी के सम्पूर्ण उपन्यास की मानसिकता, जीवन–प्रणाली का सहज, सरल, पारदर्शी तथा सुंदर चित्र की अभिव्यक्ति का उन्मेष उद्भाषित है। लेखिका अत्याचार के माहौल में स्वस्थ समाज का निर्माण करना चाहती है। उपन्यास में मानव जीवन के विभिन्न आयामों को रेखांकित किया गया है।

लेखिका शुभदा मिश्र जी को उपन्यास लेखन की सफलता के लिए हार्दिक बधाई।

प्रकाशक–ब्लूरोज पब्लिशर्स, अमेजोन, फ़िलिपकार्ट,
मो0–8269594598

११. पीडोफिलिक नागार्जुन विवादों और साज़िशों के बीच

डॉ0 अभिषेक कुमार, बलिया, बेगूसराय (बिहार) ने पीडोफिलिक नागार्जुन विवादों और साज़िशों के बीच इस पुस्तक के द्वारा, "गुनगुन थानवी ने बाबा पर बलात्कार का जो आरोप लगाया, शातिर बताया तथा अपनी निश्छलता के कारण दूसरों का आतिथ्य स्वीकार करने वाले बाबा को मुफ्तख़ोर तक कहा" उनकी इस दुर्भावना से संवेदित होकर बाबा के पाँच दशक की काव्य–यात्रा का वर्णन करते हुए उनपर लगे चरित्रहीनता के आरोप को दूर करने का सफल प्रयास किया। कबीर ने लिखा है...

"बुरा जो देखन मैं चला बुरा न मिलिया कोई।
जो दिल ढूंढा आपना, मुझसा बुरा न कोय।।"

साहित्य अकादमी से सम्मानित लेखिका मृदुला गर्ग दिप्रिंट से हुई बातचीत में कहती हैं, 'किसी के मरने के बीस साल बाद किसी आरोप का कोई औचित्य नहीं है। मैंने अपने जीवन में कभी नागार्जुन को लेकर ऐसी कोई बात नहीं सुनी, हो सकता है कि ये पब्लिसिटि पाने का कोई तरीका हो। किन्तु हम उनके साहित्य को किसी आरोप से जोड़कर नहीं देख सकते।" नागार्जुन जीवन और कविता में बेहद बेलिहाज और निडर व्यक्तित्व वाले सर्जक रहे हैं। मैथिली, बंगला और संस्कृत के अलावा इन्होंने हिंदी के स्वाभाविक प्रवाह को कहीं भी असहज नहीं होने दिया, बल्कि हिंदी को और भी प्रवाहपूर्ण और संगीतमय बनाया। सच तो यह है कि नागार्जुन अपनी विराटता छिपाए हुए अपने समय के विलक्षण काव्य–वामन हैं। इनके व्यक्तित्व का स्वरूप इनका वाह्ययकार एवं अन्तर्मन की वृत्तियों से परिलक्षित होता है। व्यक्ति वह इकाई है, जिसके द्वारा व्यक्तित्वों को पहचाना जा सकता है। उसमें उनका सोचना, लिखना, जीवन–यापन का तरीका, रहन–सहन, मनोवृत्तियों तथा आदतें, संस्कार, शारीरिक ढ़ाँचा और वेशभूषा आदि गुणों का समावेश होता है। किसी भी साहित्यकार का जीवन, मान्यता, भाव–भावना का प्रतिबिम्ब उनके साहित्य में दिखाई देता है। इसलिए साहित्यकार के कृतित्व को देखने से पहले व्यक्तित्व पर सोचना अनिवार्य है। व्यक्तित्व में परिवार, समाज, परिवेश का चित्रण होता है। नागार्जुन का बाह्य व्यक्तित्व में कुछ भी ऐसा नहीं था जो उन्हें असाधारण सिद्धकर सके। रहन–सहन सीधी–साधी, उच्च विचार, मोटे खद्दार का कुर्ता तथा पैजामा में बहुत ही साधारण दिखते थे। शोषित और पीड़ित जन के हिमायती। ये स्वाभिमानी, आडम्बर और प्रदर्शन से बेहद नफरत करने वाले सहज जीवन के चितेरे थे। जीवन पर्यन्त नागार्जुन आम आदमी को इंसाफ दिलाने के लिए अमानवीय व्यवस्था के खिलाफ लिखते रहे। इस प्रकार इनका एक महान जीवन दर्शन है–विशाल व्यापक विश्व दृष्टि है। इनके सम्पूर्ण साहित्य में और सम्पूर्ण बहस के बीच कहीं न कहीं स्त्री की मौजुदगी है; विशेष कर बेटी बेचना, बाल विवाह और विधवाओं की दयनीय स्थितियों का मार्मिक चित्रण के रूप में। हिंदी में इनका उपन्यास 'रतिनाथ की चाची' तथा मैथिली में 'पारो' है। ये दोनो उपन्यास स्त्रियों की तड़प, घुटन और दमन की ऐसी दास्तान है जिन्हें पढ़कर एक सामान्य व्यक्ति भी अंदर तक सिहर जायगा। कथा साहित्य की तरह कविता में भी स्त्रियों के प्रति विशेष करुणा है। स्त्रियों के प्रति इनकी संवेदना उनकी ही आवाज में अन्याय और अत्याचार के प्रति जहाँ इस प्रकार हो, वहाँ बाबा के चरित्र की संवेदनशीलता का और क्या यथेष्ट प्रमाण हो–

"जा रे राक्षस, जा रे पुरुष जात
तेरी ही मारी मर रही हैं हम
कराह रही हैं, कुहर रही हैं हम
खरीदते हो हमें लेकर बाप और काका
गुजरता है पानी की तरह दिन मेरा
जीवन हो गया है कैसा कठिन मेरा
सुने कौन आज, किसे क्या कहूँ
फटो हे धरती, समा मैं जाऊँ।"

नागार्जुन ने अपनी कविताओं में अपने बारे में, अपने स्वभाव के बारे में कई जगह लिखा है, जिनसे उनके व्यक्तित्व का एक स्वरूप तैयार किया जा सकता है। उन कथनों पर गौर करना रोचक होगा जो कवि के व्यक्तित्व के अध्ययन का एक प्रामाणिक तरीका भी होता है। डॉ0 अभिषेक के द्वारा द्रष्टव्य विभिन्न उदाहरणों से यह स्पष्ट दिखता है कि कवि प्रतिबद्ध है जनता से, जनसंघर्ष से, जनता के दुश्मनों से लड़ने के लिए, अपने आप को भी व्यामोह से उबारने के लिए। प्रतिबद्धता से उत्तरदायित्व उत्पन्न होता है। नागार्जुन अपने इस दायित्व और उत्तर के प्रति हमेशा जागरूक रहे। नागार्जुन के काव्य की एक बड़ी बात यह है कि, कवि का व्यक्तित्व काव्य के सारे–अंगों में घुला–मिला होता है, चूंकि इनका व्यक्तित्व हिन्दी नवजागरण, राष्ट्रीय स्वाधीनता–संग्राम, किसान आन्दोलन बौद्ध धर्म–दर्शन से लगाव और अंत में मार्क्सवाद के प्रभाव से बना है, इसलिए उनका व्यक्तित्व सामाजिक, ऐतिहासिक और मानवीय है। इसी व्यक्तित्व के मेल में उनके काव्य के सारे अंग परिलक्षित होते हैं। इससे साफ प्रतीत होता है कि कवि पहले मनुष्य होता है जो समाज के सामने सर्जनात्मक स्वरूप पेश करता है।

सामान्यतः स्त्री के प्रति आकर्षण की अनेक कविताएं नागार्जुन ने लिखी हैं। इनमें एक पुरुष के हृदय में स्त्री के प्रति आकर्षण को व्यक्त करते हुए कवि ने मर्यादा का पालन किया है। मर्यादा कोई नैतिक बन्धन नहीं है। बल्कि वह स्वयं कवि के द्वारा तय की हुई सीमा है, जिससे सम्बन्धों में या आकर्षण में सन्तुलन बना रहे।

"कदम–कदम पर मुस्काती है
बात–बात पर हंस देती है
दिल का दर्द कभी न जाहिर करती है
सच बतलाना, कभी उसांस नहीं भरती है?
मुझको तो लगता है, तूने बहुत–सा जहर पिया है।

नागार्जुन के मन में स्त्रियों के प्रति अत्यधिक सदाशयता है। वे समाज मे नारी की भूमिका और मुक्ति के उपायों को मिलाकर देखते हैं। लेकिन नारियों में बढ़ती फैशनपरस्ती और तथाकथित आधुनिकता पर "जयति नखरंजनी" नामक कविता में तीखा व्यंग्य

भी करते हैं।

जीवन और समाज का कोई क्षेत्र ले लें, आपको नागार्जुन के काव्य में मिल जायेगा, और वह उसी तरह से जैसा मनुष्यत्व के लिए उचित होता है। इस तरह नागार्जुन की कविताओं को पढ़ने से महसूस होता है कि वे जीवन के मोर्चे पर के कवि हैं। उनकी कविता जीवन के मोर्चे की कविता है। यह मोर्चा उतना ही विस्तृत है, जितना स्वयं मनुष्य का जीवन। अतएव नागार्जुन की कवित्व–शक्ति और गहरी संवेदनशीलता का अनेक यथेष्ट प्रमाण हैं। उन्होंने अपने काव्य में संवेदनशीलता को नया धरातल दिया है, जो यथार्थवाद, वैज्ञानिकता, मानवीय करुणा और अनवरत संघर्षशीलता से बना हुआ है।

इस प्रकार डॉ0 अभिषेक इनके काव्य में साहस, अनूठे उपमान, यथार्थ की प्रखरता, ऐतिहासिकता, कालजयिता, प्रेम की निश्छलता, नूतन लय–छंद, अनूठे प्रकृति चित्रण, प्रखर जनवादिता, नारी सौंदर्य के प्रति खुली दृष्टि आदि भाव पाते हैं। इन सारी विशेषताओं के परिप्रेक्ष्य में इन्होंने इस कृति के माध्यम से स्पष्ट कर दिया है कि बाबा के हृदय में बच्चों के प्रति लेश मात्र भी वासना की भावना नहीं थी और न वे इस प्रकार के रोग से ही पीड़ित थे। और अंत में उनकी कविता उद्धृत है....

"तेरे–मेरे दरम्यान
बड़ा फासला है बेबी!.....
क्या मैं तेरे लिए कोई प्यारा सा नाम
खोज लूँ मेरी बेबी!"

पुस्तक के रचनाकार डॉ0 अभिषेक जी को इस शोध के लिए सादर धन्यवाद और सफलता के लिए हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएं। मो0–8676838503, 9304664551

१२. खिड़कियों से झाँकती आँखें

सुधा ओम ढींगरा, यू0एस0ए0 द्वारा रचित यह कहानी संग्रह जीवन की उस मनोदशा का दस्तावेज है, जिसमें लोभ–लालच, अलगाव, घुटन, बेगानापन आदि मनोवृतियों का यथार्थ चित्रण निहित है। बदलते आधुनिक–भारतीय– समाज में पारिवारिक रिश्तों में बदलाव, बेकारी, अकेलापन, उदासी, नारी–अस्मिता जैसी कई महत्त्वपूर्ण विषय इनकी कथाओं में अभिव्यक्त हुई हैं। वैसे तो इनकी कहानियाँ विभिन्न प्रकार के मुद्दों को लेकर उकेरी गई हैं जो आज के आधुनिक भौतिकवादी जगत् की देन है। लोग आज अपने जीवन में भौतिक सुखों की तलाश में सबसे ज्यादा भटकते हैं जिसके कारण वे अपने आस–पास की जिन्दगी में जो कुछ भी है या जो कोई भी है उनसे दूर हो जाते हैं या कट जाते हैं। लेकिन कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो अपनी समझदारी से हर समस्या का हल ढूंढ लेते हैं। कोई भी रिश्ता इस आशा से नहीं बनाया जाता कि इसमें किसी एक को कमजोर रखा जाएगा। जब रिश्ते बिगड़ते हैं, तब बेहद तकलीफ देते हैं। कई बार हम इस बात पर ध्यान ही नहीं दे पाते हैं कि जिस सुख की आशा में हम रिश्ते को तोड़ कर चले जाते हैं वह सुख भी नहीं मिलता और रिश्ते भी बिखर जाते हैं।

सुधा ओम ढींगरा के इस संग्रह में कुल 8 कहानियाँ हैं सभी कहानियों में भारतीय मिट्टी की सौंधी गन्ध व्याप्त है। इसके पात्र अतीत और वर्तमान के उभरते भावनात्मक संघर्ष का सामना करते हैं जो इनकी कहानियों की श्रृंखला में हमारी दुनिया का अंकन होने के साथ–साथ दुनिया को पहचानने तथा उसकी व्याख्या करने की परियोजना के लिए सन्दर्भ कोष के रूप में ग्रहण की जा सकती है। इसी संग्रह की एक कहानी ''खिड़कियों से झाँकती आँखें'' है, जिसमें बेसहारा, पथराई, उदास, बोझिल, परेशान, किसी को खोजती, पीड़ित बूढ़ी आँखें अपनी–अपनी खिड़कियों से झाँकती उम्मीदों को तलाश रही हैं कि कभी न कभी, कोई न कोई हमारा जरूर आयेगा, जिसके लिए जीवन के सारे सुख–चैन उसके बारे में पूछता है कि इन आँखों को जिनकी तलाश है वो कहाँ हैं?एक दम्पति की करुणामयी दर्दीली आवाज निकली–'बेटा पैरिस में रहता है, फ्रांसिसी लड़की से उसने शादी कर ली है। हम दम्पत्ति भारत से यहाँ आकर ख्याति प्राप्त चिकित्सक रहे। हम इस शादी के पक्ष में नहीं थे।' नहीं और हाँ के इस जिद्द ने दोनों में इतनी दूरियाँ बना दी कि उसके इंतजार में हम बूढ़े हो गए। उसने अपना नम्बर भी बदल लिया। हमारा प्यार भी भुला गया। जिन रिश्तों के लिए पौधा वृक्ष बनकर विदेश में जड़ जमाया, उन्हीं रिश्तों ने स्वार्थ की ऐसी आंधी चलाई की वृक्ष के सारे पत्ते झड़ गए, टुंड–मुंड हो गया। सागर ने ढाढ़स बंधाते हुए कहा भारत की धरती इस टुंड–मुंड वृक्ष को भी हरा करने की क्षमता रखती है इसलिए आप मेरे साथ स्वदेश को लौट चलें। अपनी धरती ने उसका टुंड–मुंड भी स्वीकार किया यह सोच कर दम्पति डॉ. रेड्डी ने एक लंबी सांस ली।

इन्होंने अपनी कहानियों में विभिन्न कलात्मक तरीकों को बड़ी कुशलता से प्रयोग किया है और इससे इनकी रचनाएँ अपने ढ़ंग से निराली बन पड़ी है। इनकी कहानियों की शैलियों में बहुत विभिन्नता है। संरचना की दृष्टि से उनमें वर्णन के साथ–साथ वार्तालाप आदि अनेक माध्यमों का बहुधा प्रयोग किया गया है। कहानी के आरम्भ और अंत के विन्यास में लेखिका की मेहनत दिखती है। इनकी कहानियों का समाजिक ढ़ांचा जीवन को सहज, सामाजिक संबंधो के साथ प्रस्तुत करने का है। कहानी की रचना सामग्री प्रायः सभी प्रमुख अन्तर्सम्बन्धों के साथ नियोजित करने की कला इनके रचना–शिल्प की बहुत बड़ी खूबी है। उक्त संग्रह में इनकी कहानियाँ–'वसूली' 'एक गलत कदम' 'ऐसा भी होता है' ' कौस्मिक की कस्टडी', 'यह पत्र इस तक पहुँचा देना', 'अंधेरा–उजाला' या एक नई दिशा' सब में परिवार की एक इकाई अवश्य दिखाई देती है। किसी भी कथाकार के व्यक्तित्व अथवा उसके मानसिक संघर्ष से उपजी रचना भावनाओं के उतार–चढ़ाव में आग, पानी और आँधियों के कठिन झकोले सहकर ही अपनी कला–सृष्टि रच पाती है। इनके साहित्यिक विचारों और रचनाओं को पढ़ते समय महसूस होता है कि इन्होंने समाजिक समस्याओं को लेकर एक खास तरह की सरलीकरण प्रस्तुत किया है, इनके पात्र और परिस्थितियाँ सपाट हैं तथा इनकी समस्याएँ मूलतः आर्थिक, सामाजिक और शैक्षिक हैं।

इस प्रकार अन्य कहानियों में भी इन्होंने सामाजिक सरोकारों से

जुड़कर समाज के आम आदमी की पीड़ा, पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति, वैश्वीकरण, और बाजारीकरण से उत्पन्न समस्याओं का यथार्थ चित्रण करने में सफलता अर्जित की है। समकालीन कहानियों में समाज के कोई भी अंग अनछुआ नहीं रहा है। आज हमने जिस–जिस रूप में जिंदगी को देखा, भोगा उन सबका प्रामाणिक दस्तावेज इनकी कहानियों में देखने को मिलता है। इन्होंने समाज में व्याप्त विद्रूपताओं को चित्रण करने में यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाया है। लेखिका सामाजिक संबंधों और पारिवारिक रिश्तों के पुनर्मूल्यांकन में किसी प्रकार की रागात्मक या रुमानियत से प्रभावित नहीं रही हैं। वर्तमान समाज में परम्परागत मूल्यों को धारण करनेवाले बुजुर्गों की दयनीय स्थिति और नवीन संबंधों को जन्म देने वाली युवापीढ़ी का यथार्थ चित्रण इनकी कहानियों में हम पाते हैं। वैश्वीकारण और बाजारीकरण के बढ़ते प्रभाव से समाज में फैलती हिंसा, अनैतिकता, अमानवीयता का यथार्थ चित्रण अभिव्यक्त हुआ है।

संग्रह की कहानियाँ मानव जीवन और सामाजिक समस्याओं से संदर्भित है, जिसमें मानवता, उदारता, सहानुभूति, संवेदना तथा मानवीय मूल्य की झलक है। लेखिका इस बात पर बल दी हैं कि जीवन मूल्यों का प्रयोजन व्यक्ति के जीवन की सार्थकता हेतु अनिवार्य है, क्योंकि जीवन मूल्यों को अपनाए बिना व्यक्ति समाज या राष्ट्र की उन्नति नहीं कर सकता। वस्तुतः जीवन मूल्यों का प्रयोजन ही समाज में नयी व्यवस्था का संचार करता है जो मनुष्य को व्यक्तिगत स्वार्थ से निकाल कर समाज को मानवीय कल्याण के लिए लोकमंगल की भावना से आप्लावित होकर इसे मानवतावादी भूमि पर प्रतिष्ठित करता है। इनकी कहानियाँ प्रभावी, रोचन तथा कलात्मक प्रस्तुति के साथ नैतिक बोधात्मक हैं।

प्रकाशक– शिवना प्रकाशन, सिहौर, मध्य प्रदेश, मो0–9584425995

१३. अंगिका बालगीत समग्र : डॉ० अमरेन्द्र

"अंगिका बालगीत समग्र" डॉ0 अमरेंद्र, भागलपुर (बिहार) का यह अत्यन्त संवेदनशील बालसाहित्य का एक दस्तावेज है। जिस भाषा में बालसाहित्य का सृजन नहीं होता उसकी स्थिति ऊसर धरती के समान है जहाँ फसल पैदा नहीं होती। डॉ0 अमरेन्द्र ने अंगिका भाषा में इस बालगीत को लिखकर बच्चों के प्रति प्यार, दुलार और मनुहार उड़ेल दिया है। इनके समग्र बालगीतों का संग्रह–"अंगिका बालगीत समग्र" को अभिनन्दन जी ने सम्पादित कर अंगिका साहित्य का गौरव बढ़ाया है। ध्यातव्य है कि अन्य समाजों की तरह भारत में भी साहित्य श्रुती–परंपरा से आया है, जिसमें बच्चों तथा बड़ों के साहित्य के बीच विशेष विभाजन नहीं था। सबसे पहले उसका स्वरूप लोकसाहित्य का था। वही उस दौर में लोगों के मनोरंजन का साधन बना। लोकगीतों या जनभाषाओं में जो सरसता व सहजता रही है उन्हें लोरियों, गीतो के रूप में बाल मनोरंजन के लिए अपना लिया गया है। कथा साहित्य के क्षेत्र में राजा–महाराजों के जीवन चरित्र और पौराणिक विषयों को ही लम्बे समय तक बाल साहित्य का पर्याय माना जाता रहा आगे के वर्षों में यदि पंचतंत्र और हितोपदेश को छोड़ दिया जाय, तो ऐसी कोई और कृति नहीं थी, जिसे विशुद्ध बालसाहित्य की कोटि में रखा जा सके। पर बाल–मनोविज्ञान के अनुरूप सहज संप्रेषणीय एवं मौलिक साहित्य की संकल्पना आधुनिक युग की देन हैं। गद्य का संसार पद्य की अपेक्षा अधिक व्यापक और विविधतापूर्ण सदा से रही है, इसमें विचारों की स्पष्ट एवं त्वरित अभिव्यक्ति संभव है। इनकी संपादित कृति आधुनिक सोच और ज्ञान–विज्ञान के उपकरणों से चुने मसौदों से संगृहीत है।

प्रत्येक देश का भविष्य उसके बच्चों पर निर्भर करता है, वही उसके भावी निर्माता होते हैं। छोटे बच्चों का संसार अपने आकार, प्रकार, रंग–रूप में बड़ों के संसार से सर्वथा भिन्न होता है। उसे निजी तौर पर शिष्टाचार, सभ्यता, आदर्श, राष्ट्र, नियम विधान, समाज या जाति बोध की चिंता नहीं रहती है, बल्कि उसे खेल–खिलौने, फूल–पत्ते, पशु–पक्षी, हरियाली, तोता–तितली, गीत–कविता या ऐसी पुस्तक अच्छी लगती है जिसमें प्राकृतिक संगीत का स्वर सुनाई देता हो। उसे उसकी रुचि, कल्पना, भाषा एवं भाव के अनुसार विकसित होने का अवसर यह बालगीत अपने में समेटे हुए हैं।

कुछ–न–कुछ भावनाएं, विचार या कल्पनाएँ बच्चों के मन में हर समय विद्यमान रहती है। कवि उन भावनाओं और कल्पनाओं को समझने की चेष्टा करता है जिसके अध्ययन में बहुत कठिनाइयां होती हैं। मनोवैज्ञानिक अध्ययन को सुलभ बनाने के लिए उसे भावनात्मक कसौटी पर कसकर, उसके मनोभावों को संगीत में ढाल कर समाजिक मर्यादाओं का बोध कराना होता है। इसमें मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण व विषय की गम्भीरता के साथ–साथ रोचकता एवं मनोरंजकता का भी ध्यान रखा गया है इनके गीत बच्चों को उनके परिवेश, सामाजिक–सांस्कृतिक परम्पराओं, संस्कारों, जीवनमूल्यों अचार–विचारों और व्यवहारों के प्रति सतत चेतन बनाने में अपनी भूमिका निभा रहे हैं। इस बालगीतों में बालमन को विस्तार देने के लिए जीवन निर्माण का संदेश भी समाहित है–

"अक्कड़–बक्कड़ अस्सी–आठ
जे पढ़तै, ऊ बनतै लाट।
लाट बनी कै दिल्ली जैतै
दिल्ली सें पटना ऊ ऐतै
पटना आय कै हुकुम चलैतै
पैतै इनरासन के ठाठ।
अक्कड़–बक्कड़ अस्सी–आठ।"

इनके बालगीतों में बहुत से गीत ऐसे हैं जो समाज में नए विचार, नए आदर्श और मर्यादाएँ स्थापित करने की ओर संकेत कर नई प्रेरणाएँ देते हैं। सरल भाषा में लिखे होने के कारण बच्चों में सरलता से ग्राह्य है। हिन्दी के प्रायः सभी कवियों ने राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित होकर गीत लिखे हैं पर बच्चों के मानसिक स्तर पर उतर कर उनकी मनोभावना के अनुरूप विशेष रूप से बच्चों के लिए लोकसभा में कम ही बालगीत लिखे गए हैं, खासकर अंगिका भाषा में जो अंग क्षेत्र के लिए काफी महत्त्व रखता है।

इनके गीतों में राष्ट्रीय चेतना एवं देश के प्रति श्रद्धा का भाव भी देखने को मिलता है–

"कुच्छु त देश ल सोच
पहिलै सेत छेलौं छोटा"
"होना जों छौ देव, अमर
भारत माय के वन्दे कर
मेल–मिलाप के सागर भर
भारत माय के वन्दे कर।"

इनके व्यंग्य में भी नैसर्गिक संस्कारों की बात रहती है जिसमें ईमानदारी नैतिकता, दायित्वबोध,सूक्ष्म दृष्टि, विसंगतियों पर पकड़ तथा तथ्यपरक विश्लेषण क्षमता और हास्यवृत्ति मिलती है व्यक्ति और समाज का व्यवहार स्थापित मानदण्डों के अनुसार हो इसलिए समाज को दर्पण दिखाने की जरूरत पड़ी क्योंकि व्यक्ति और समाज के मूल्यों में पतन होने लगा, नैतिकताओं का ह्रास होने लगा है। कवि विसंगतियाँ उजागर कर उनमें चेतना जगाने का प्रयास किये हैं–

"पोकत कद्दू खिच्चा आम
रघुपति राघव राजा राम
सड़क चौराहा जामे जाम
रघुपति राघव राजा राम
चोरों कै दै पुलिस सलाम
रघुपति राघव राजा राम।"

पुस्तक में बुद्ध के जीवन पर आधारित "पंचामृत" के नाम से बाल काव्य नाटक भी है, जिसमें जीवन के मर्म को, गुरू के महत्व को, शिष्टाचार को, अतिथि सेवा एवं नैतिकता आदि को बच्चों में उद्बोद्धित करने का भरसक प्रयास किया गया है। इनके बालगीत अंगिका भाषा–कौशलों को विकसित करते हुए बच्चों की दुनिया को समृद्ध बनाने के लिए एक विशाल स्रोत का प्रतिनिधित्व करते हैं। बाल मनोविज्ञान को उजागर करती, बच्चों में विश्वास दर्शानेवाली यह पुस्तक उन साहित्यकारों के लिए एक असरकारक कविता, गीत आदि का ऐसा संग्रह प्रस्तुत है जो बच्चों को निरा बच्चा मानते हैं तथा उन्हें जादू–टोने या परी कथाओं जैसी अतार्किक रचनाओं द्वारा बहलाने का प्रयास करते हैं, उनके लिए भी जो यह सोच कर बच्चों के लिए नहीं लिखते कि इससे उनकी रचनात्मक मेधा को कमतर समझा जायगा या बाल साहित्यकार कहलाने से उन्हें वह प्रतिष्ठा नहीं मिल पायगी जो कदाचित प्रौढ़ लेखन द्वारा संभव है।

इस प्रकार इनका यह संग्रह बालकों के चँहुमुखी विकास में, बच्चों के जीवन को आलोकित करने में एक मशाल है।

किसी पर दिल लुटाते हैं ज़रूरत से ज़ियादा ही
किसी को आज़माते हैं ज़रूरत से ज़ियादा ही

समय की बात है जो आँख फेरे थे कभी हमसे
हमें अपना बताते हैं ज़रूरत से ज़ियादा ही

सताते हैं सभी को हुस्न वाले बात सच है ये
मगर हमको सताते हैं ज़रूरत से ज़ियादा ही

नये प्रेमी नहीं हैं हम पुराने हो चुके कब के
मगर अब तक लजाते हैं ज़रूरत से ज़ियादा ही

कभी आता न हमको ध्यान ख़ारों की चुभानों का
कभी जब फूल भाते हैं ज़रूरत से ज़ियादा ही

अजब है रात–भर रेला लगा रहता ख़यालों का
सवेरे ख़्वाब आते हैं ज़रूरत से ज़ियादा ही

परी अब है नहीं तो फिर परी की याद क्यों इतनी
परी को हम भुलाते हैं ज़रूरत से ज़ियादा ही

कपोलों और अधरों की न जातीं खुश्कियां बिल्कुल
नयन आंसू बहाते हैं ज़रूरत से ज़ियादा ही

विधाता हो, मसीहा हो कि हो समराट ही कोई
हमीं आशा लगाते हें ज़रूररत से ज़ियादां ही।

केशव शरण
सिकरौल, वाराणसी
मो0–9415295137

क्या बतायें जिस्म दिल को और जां को क्या हुआ
बिंध गये सब इक तरफ़ से, पर कमां को क्या हुआ

उम्र तन की हो गयी है, इसलिए बस इसलिए!
किसलिए हो जाय बूढ़ा, मन ज़वां को क्या हुआ

देखकर दो प्रेमियों को क्यों परेशां हाल है
क्यों नहीं अपनी जगह है इस ज़हां को क्या हुआ

किस मुहब्बत से बरसता आ रहा था अब तलक
क्यों लगा बिजली गिराने, आसमां को क्या हुआ

ख़्वाब की मंजिल चला था किस नये उत्साह से
क्यों नहीं पहुँचा अभी तक, कारवां को क्या हुआ

था बना तिनका–ब–तिनका ख़ूबसूरत किस क़दर
गिर रहा तिनका–ब–तिनका आशियां को क्या हुआ

हम परिंदो का पुराना है ठिकाना ये चमन
सौंपता सय्याद को है, बाग़बां को क्या हुआ।

समीक्षा

विवस्त्र की अन्य कहानियाँ

प्रताप दीक्षित,
उत्तरांचल कॉलोनी, गाजियाबाद
मो0–9956398603

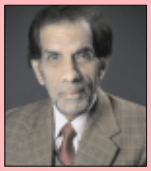

भविष्यहीन परिदृश्य में जीवन की खोज के अभावों और तनावों से उपजे विलगाव और अजनबीपन की चरम परिणति व्यक्तित्व विभाजन के रूप में प्रकट होती है और यही हुआ है 'गुमशुदा' में असुरक्षा और भविष्यहीनता की पीड़ा झेलते निम्नमध्यवर्गीय गृहस्थ रघुवीर शरण के साथ। दस हजार की पुरस्कार राशि के लिए एक अन्य वृद्ध पुरूषोत्तम लाल को खोजने निकले रघुवीर शरण की विकट जीवन स्थितियां किस तरह उन्हें अपने परिवार से मुक्त कर देती हैं, यह सब इस मर्मान्तक कथा में अत्यंत कुशलता और संलग्नता से चित्रित हुआ है। औत्सुक्य का आद्यांत निर्वाह और विश्वसनीय चरमोत्कर्ष कला के तीनों क्षणों को प्रवीणता में रूपायित करते हैं। बहुमुखी अव्यवस्था, चारित्रिक अवमूल्यन से प्रदूषित मानसिकता झेलने वाले व्यक्ति की पल–पल रंग बदलती संवेदना के गतिमय वर्णों का पुनर्सृजन करने वाली प्रवाहमयता और बेधड़क कहानी 'तमाचा' अपनी संक्षिप्तता, क्षिप्रता और कल्पनाशीलता के गुणों के कारण अभीष्ट प्रभाव छोड़ती है। अनायास अभिव्यक्त व्यंग्यपरकता (जब शहर का यह हाल है .... इन कष्ट के क्षणों में भी उसे देश, समाज की चिंता थी ....) पूरी कहानी के मंतव्य/केन्द्रीय भाव का पूर्व संकेत दे जाता है। ठगे जाने का आशंका, भीरूता, गुंडई, काइयाँपन और धूर्तता के मनोभावों को चित्रित करने वाली भाषा और स्वतः–कथन इस अद्वितीय रचना की शक्ति है।

परोपकारी के छद्मवेष में अधेड़ और खुद की बेरोजगारी झेलते 'भाई साहब' के व्यक्तित्व का रहस्योद्घाटन 'निर्वासित में अत्यंत कुशलता और कारुणिकता से किया गया है। औत्सुक्य का निर्वाह, चरित्र चित्रण, स्थिति संयोजन सभी कुछ जीवंत और मर्मस्पर्शी चित्र उकेरते हैं।

'फेयरवेल' में वर्गीय भेद के आधार पर सम्मान और प्रतिष्ठा के स्तरों का प्रभावशाली अंकन हुआ है। ट्रांसफर, पोस्टिंग, प्रमोशन और विदाई जैसे अवसरों पर की जाने वाली पार्टियों में किस सीमा तक यांत्रिकता, दांवपेंचों और काइयांपन के खेल खेले जाते हैं, यह सब इस रचना में बखूबी चित्रित हैं। अपनी 'अनहुई विदाई पार्टी' में भाग लेकर (बच्चों और पत्नी हेतु प्रमाण के रूप) रामसेवक का घर लौटना व्यथित करता है। 'नरक में लोग नहीं मरते' के केन्द्रीय पात्र आशुतोष बाबू पर अस्पताल के वार्ड में जो अनहोनी बीती, उसका क्रमिक, विश्वसनीय और मार्मिक चित्रण अस्पतालों/नर्सिंग होम के संवेदनहीन, क्रूर, स्वार्थी और लुटेरे तंत्र की सुपरचित व्यवस्था से साक्षात् कराता है। अंत में 'बापू जिन्दा है' का चरमोत्कर्ष झकझोर देता है। इस तरह की कहानी लिखना बिना गहरी संलग्नता और लेखकीय प्रतिबद्धता के संभव नहीं।

किसी व्यक्ति की असामयिक मृत्यु उसके अपने परिवार के सदस्यों के लिए भीषण त्रासदी बनकर आती है – पत्नी के लिए एकाकी, असुरक्षित और जीवनयापन तथा दायित्व निर्वहन की अनगिनत दुश्चिंताओं के रूप में तथा संतान के लिए एक पथ–प्रदर्शक, स्नेह वत्सल तथा आदर्श पालक–पिता की अनुपस्थिति के रूप में। यह त्रासदी स्वार्थी, निंदक तथा सर्वाधिक, संयुक्त परिवारीजनों के धृणित तथा क्रूर व्यवहार के चलते और भी विडंबनामय स्थितियों को जन्म देने वाली सिद्ध होती है। 'अनुत्तरित' इन्हीं पीड़क स्थितियों का अंकन करने वाली कहानी के अंत में सुमेधा द्वारा पूछा गया मासूम सवाल 'मम्मी पोस्टमार्टम क्या होता है?सम्बन्धियों के आचरण पर वेधड़क टिप्पणी कफ़नखसोट करता हुआ संवेदना से गहरे जुड़ता है। हिंसक गुर्राहटों के बीच सुधा का सशक्त तथा सही निर्णय कहानी के तार्किक तथा अपेक्षित निष्कर्ष के रूप में चित्रित हुआ है, जो इस कहानी को संग्रह की श्रेष्ठ कहानियों की पंक्ति में रखता है।

'उस शहर में आखिरी शाम' कथावाचक 'वह' के अपने शहर में बिताए गए लम्बे जीवन की स्मृति–यात्रा है, जिसे उसने पूर्ण निजता, संलग्नता, निरीक्षण क्षमता और गहरी संवेदना के साथ अंकित किया है। हाईस्कूल के छात्र के रूप में (टाइप स्कूल 'क') सीखते समय सिमी वाटसन नामक युवती से परिचय, अंतरंगता, सिमी का मंगेतर ओलिवर से प्रणयभंग, सिमी का अकेलापन, बेकारी, बेनामी, बीमारी, प्रताड़ना और अंततः गुमनाम मौत ... यानी जीवन से मृत्यु तक के सारे चरण लेखकीय प्रतिबद्धता, विश्सनीय कथा वाचक और संवेदनात्मक जुड़ाव के सहारे पूर्ण मार्मिकता एवं बोधकता में रूपायित हुए हैं। सिमी की प्रेमाभिव्यक्ति के छोटे–छोटे, पर गहरे सघन क्षणों का पुनर्सृजन इस जीवंत रचना की शक्ति बने हैं।

'बस कि मुश्किल है हर काम का आसाँ होना।' 'आदमी को भी मयस्सर नहीं इन्सां होना।' इन्सां होना, यानी एक कर्तव्यशील, ईमानदार, सहज, निस्वार्थ, उचित, स्वाभिमानी और प्रतिदान निरपेक्ष व्यक्ति होना और अपने परिवेश में ऐसे ही अन्य व्यक्तियों, स्थितियों की अपेक्षा करना, लेकिन 'विवस्त्र' के सदाशिव जैसे इन्सान के हिस्से में जो आया है, वह सिरे से आखिर तक (परिवारजन, अखबार वाला, वह राशन दुकानदार, टेम्पो ड्राइवर, सिपाही, विधायक, चड्डा....) स्वार्थ और उपयोगितावादी संबंधों की घेराबंदी है, जिसमें उसका महत्व/निजता/स्वाभिमान आदि आत्मिक मूल्य, बस चूसकर फेंक देने से अधिक गिनती नहीं रखते–खीझे–थके–टूटे–पराजित सदाशिव को उसकी पहचान एक प्रयुक्त गर्भरोधक वस्तु से भी निचली स्थिति के रूप में होती है। जो पाठक को एक गहरी पीड़क और अवसाद–भरी स्थिति से गुजरने को विवश करती है। बहुत ही सहज भाव से चित्रित स्थितियां और घटनाएं असर छोड़ती हैं।

'गंधमादन पर एक दिन' प्रेम के बहुरंगी वर्णन के एक अत्यंत दुर्लभ, अवर्णनीय, अलौकिक, दिव्य वर्ण की चित्रमय कथा है। आशीष की पुंसत्व विहीनता का रहस्योद्घाटन और हरीश का गुर्दा देने से मना करना, दो विपरीत स्थितियां हैं, जिनके संयोजन ने बहुचर्चित विषयवस्तु के इस विशिष्ट निरूपण ने इस प्रेमकथा को गंधमादन पर्वत से उतारकर यथार्थ के चरित्रों, जीवन स्थितियों और निष्कर्ष द्वारा

अविस्मरणीय, उद्वेलक और मर्मस्पर्शी कलाकृति बना दिया है।

अकर्मण्यता, चापलूसी, भ्रष्टाचार और जातीय भेदभाव के पंक में आकंठ धंसी प्रशासनिक कल्याणकारी व्यवस्था के आधीन कार्यरत एक सचरित्र, ईमानदार और कर्तव्यपारायण को पूरे कार्यस्थल में 'मूसगंध' बसी हुई अनुभव होती है, पर उन्हें नहीं जो भ्रष्ट व्यवस्था के स्थायी अंग बन चुके हैं। उनके लिए तो किसी का इस गंध का अनुभव करना ही व्यंग्य और कटाक्ष हेतु बन जाता है। एक सुयोग्य (अनुसूचित जाति के) युवक की मनःस्थिति का रूपांकन करने वाली यह अनुपम कथाकृति 'गुमशुदा', 'निर्वासित', 'फेयरवेल', 'विवस्त्र' आदि रचनाओं की परंपरा की पुष्टि करती है।

'रेबाक के जूते' निम्नमध्यवर्गीय जीवन स्थितियों और फैक्ट्री–जगत के प्रामाणिक, जीवंत और संलग्नतापूर्वक चित्र उपलब्ध कराने वाली एक और कथा बनकर रह जाती, अगर उसमें रेबोक नामी बहुराष्ट्रीय जूता–कंपनी के उलेख के माध्यम से भूमंडलीकारण रूपी महाव्याधि द्वारा त्रस्त, आतंकित सामान्य जन की प्रतिरोधक्षमता प्रदर्शित न की गई होती। कहानी के अंत में सदाशिव की 'अकृतग्यता' का उल्लेख और खान, सतवंत और सतविंदर जैसे 'माध्यमों' के प्रति घृणा की ज्वाला का अन्दर ही अन्दर सुलगना और दिखना लेखक की प्रवीणता को स्थापित करता है। उदारीकरण और भूमंडलीकरण के नाम पर थोड़े में गुजारा कर लेने में संतुष्ट भारत की बहुसंख्यक जनता का भावनात्मक शोषण करने और हीन भावना से ग्रसित करने के आक्रमण के विरुद्ध पहल करने वाली रचनाओं में इस कहानी का अवश्य उल्लेख होगा। अपेक्षित दहेज़ में कमी के कारण ससुर–गृह में उत्पीड़ित–अवमानित, कमाऊ होने पर भी पैसे–पैसे के लिए तरसायी जाने वाली, 'मर्द' पति के अपमानजनक, मर्यादाहीन और स्वार्थी यौन व्यवहार के चलते हर रात 'अतृप्ति के रेगिस्तान' में भटकता तन–मन और आत्मा लिए घिसटती जिंदगी जीने वाली संवेदनशील युवती और 'अब क्षमा याचना नहीं' की अद्‌भुत आत्मबल की स्वामिनी 'वह' जब परिस्थितिवश सामूहिक बलात्कार का शिकार होती है तथा समाज और परिवार के आशानुरूप दयनीय, आत्महंता, सहानुभूति, कामी अथवा अपराधी स्वभाव नर अपनाकर एक नया संकल्प लेकर, अंतर्मन की आशंकाओं को झटक देती है और आत्मविश्वास के साथ मुस्कुराकर नया जीवन जीने के लिए तैयार हो जाती है इन उद्वेलक, सार्थक और सफल कहानी का आधार है। छोटी–छोटी गतिमय और मर्मान्तक जीवनस्थितियों का चित्रण, जिनका अंतिम परिणाम 'उस' के सम्पूर्ण रूपांतरण हेतु बना है। पति के निर्लज्ज शय्या–प्रकरणों की सापेक्षिता में बलात्कारी किशोरों का शर्माना और चित्रांकन 'उसे' संतोष देता है। इस जीवंत कथा ने विवाह, अर्थ की अर्थवत्ता, मध्यवर्गीय पाखंड, यौन विज्ञान और दर्शनशास्त्र जैसे कई क्षेत्रों में पैठने का अद्‌भुत प्रयास किया है।

अंत में धार्मिक विवाह के दुष्परिणामस्वरूप पारिवारिक और सामाजिक बहिष्कार, निंदा, कटौति और प्रतिशोधात्मक व्यवहार को साहसपूर्वक सहने वाले कुल श्रेष्ठ–जीनत दंपति की अनुपम जीवन–गाथा 'अँधेरे के खिलाफ' प्रगतिशील विचारों को जीवन में उतारने के जोखिमों का परत–दर–परत उद्‌घाटन करती है। विवाह के बाद ज़ीनत के परिवार वालों मुश्किलें, अंसारी साहब द्वारा तबलीग़ (मज़हबी तालीमा) और धर्म–संस्थान परिषद् द्वारा शुद्धि का प्रयास, पारिवारिक जीवन में संक्रमण तलब और दूरी, ज़ीनत को आत्मनिर्भरता से दूर रखने वाली स्थिति और उसकी निरर्थकता–बोध आदि स्थितियां पूर्ण विश्वसनीयता और गतिमयता में चित्रित हुई हैं। दंगे के परिणाम स्वरूप ज़ीनत के परिवार की तवाही और ज़ीनत की मानसिक स्थिति की कारुणिकता का अंकन पाठक की संवेदना को झकझोरकर रख देता है। खुशबू की संवेदना के माध्यम से साम्प्रदायिकता की विभीषिका से परिचय, उसकी भयग्रस्तता और उसकी समस्या (पर यह क्या है?) का उद्‌घाटन लेखकीय सामर्थ्य की पुष्टि करता है और पाठक के मन में कई अनुत्तरित सवालों को सुलगता हुआ छोड़ जाता है।

'डबल बेड' की कथा सुपरिचित स्थितियों (अभावों, अतृप्त इच्छाओं, असुरक्षा) को संलग्नता, प्रखर निरीक्षण–क्षमता के कुशल चित्रांकन के सहारे आगे बढ़ती हुई एक अमानवीय पर पूर्ण तार्किक निष्कर्ष पर पहुंचकर समाप्त होती है। माँ के कमरे में अंटा सामान बबली की बुझी आँखें और नायक का रुदन सभी कुछ बहुत सहज, स्वाभाविक और संतुलित रूप से हुआ है।

प्रेम के विविध रूपों में से हर एक अतुलनीय, अलभ्य और दिव्य है। ' निन्नी कब मरी थी', में प्रभास की ममेरी बहन नेहा उर्फ़ निन्नी के प्रति प्रेम का चरमोत्कर्ष देखिये – 'उसके इलाज के लिए हर संभव उपचार उपलब्ध कराने, भाई–भाभी के व्यंग्य–बाणों के सहने और अंततः उसकी मृत्यु के बाद का सच स्वीकार करने को तैयार नहीं प्रभास। इस क्रम में वह शिजोफ्रेनिया का मरीज़ बन जाता है। अंततः स्वाभाविक अवस्था में आने पर पूछता है – 'निन्नी वास्तव में कब मरी थी?' इस प्रश्न के माध्यम से कथानक निन्नी के बचपन से लेकर अंत तक के हर मोड़ पर उसके प्रति किए अन्याय को सापेक्षता में रखकर उसकी व्यथा को प्रतीकात्मकता में घनीभूत करता है और इस करुण कथा को अविस्मरणीय बना देता है।

भिखारिन युवती के ट्रेन से कटकर मरने के बाद उसकी अर्धनग्न लाश की पुष्टि छातियाँ देखकर कुत्सित यौनेच्छा से भर उठे रमेश और सिसकती पत्नी का आक्रोश ('वह बच्चे के दूध के लिए पैसे मांग रही थी। न तुमने दिए, न मुझको देने दिए') के बीच का विरोधाभास चित्रित करने वाली कहानी 'राग विषाद' भीड़भाड़ भरी भागमभाग और महानगर की यांत्रिकता से उपजी संवेदनहीन जीवन स्थितियों का बखूबी पुनर्सृजन करती है। निर्वाह कथ्य के अनरूप खरा और साहसिक है।

'विवस्त्र' की ये कहानियां सामान्य जन–जीवन के विविध प्रसंगों, उनकी संवेदना, तनाव, आर्थिक–सामाजिक–मनोवैज्ञानिक समस्याओं का यथार्थ चित्रण करती हैं। विश्वसनीय और तार्किक निष्पत्ति तक पहुँचने का प्रयास करती हैं। चरित्र–चित्रण, संवेदना की पुनर्प्रस्तुति, कथ्य के निर्वाह, भाषा–सौंदर्य, स्थिति–संयोजन, कथोपकथन और अंतिम निष्कर्ष अर्थात कथ्य–रचना के हर अंग की दृष्टि से उल्लेखनीय है।

iLrd&fooL=] y[kd&Inkf'koA

समीक्षा

शिलाएं मुस्काती हैं

डॉ0 मनोहर अभय,
प्रधान संपादक–'अग्रिमान'
नेरूल, नवी मुम्बई, मो0–9167148096

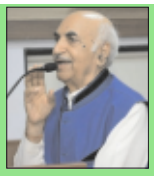

नारी की काया में प्रवेश कर कोई भी रचनाकार स्त्री की पीड़ा को उतनी साफगोई से व्यक्त नहीं कर सकता जितनी वाक् निपुणता से एक महिला सृजनधर्मी। फिर भी यह आवश्यक है कि यह पीड़ा उसकी झेली या भोगी हुई हो। आत्मसात की हो–संत्रस्त महिला की त्रासदी। आजकल समय के शिलाखंड पर प्रेम की अभीप्सा से लेकर प्रेम में छली गई किशोरियों, परित्यक्ताओं, भुलाई हुई स्त्रियों या खुरदरे दाम्पत्य जीवन पर बहुत कुछ लिखा जा रहा है। इस में भोगा और ओढ़ा हुआ दोनों हैं। विमर्शवादियों का हल्ला–गुल्ला भी। यामिनी नयन गुप्ता हिंदी कविता की ऐसी स्थापित साहित्यधर्मी हैं जो महिलाओं के मन की उथल–पुथल, बदलती सामाजिक जीवन शैली से पैदा हुई बेचैनी और नए समीकरणों को सशक्त स्वर दे रही हैं। उनके स्वर में छिछली भावुकता नहीं, महिलाओं के हर्ष–विषाद की गहरी अनुभूति है। साक्षी है 'शिलाएँ मुस्काती हैं' नामक संकलन की बासठ कविताएँ। चाहे सामाजिक सरोकार हों या जीवन की निजता के प्रश्न; इनमें जुड़ा है " प्रेम, नेह और देह का त्रिकोण"। "व्याकुल मन का संगीत" और प्रेम में पड़े होने का एहसास। "प्रेम, नेह और देह" की इस यात्रा में कभी देह पिछड़ जाती है 'अदेह' को जगह देने हेतु, तो कहीं सशक्त साम्राज्ञी बन बैठती है।

"अब मैंने जाना–क्यों तुम्हारी हर आहट पर मन हो जाता है सप्तरंग / मैं लौट जाना चाहती हूँ / अपनी पुरानी दुनिया में देह से परे. ..... बार बार तुम्हारा आकर कह देना / यूँ ही– / मन की बात / बेकाबू जज्बात, / मेरे शब्दों में जो खुशबू है / तुम्हारी अतृप्त बाँहों की गंध है।"

कहाँ देह से परे की पुरानी दुनिया, कहाँ 'अतृप्त बाँहों की गंध हैं। हर मंजर बदल गया। छा गई प्रेम की खुमारी–

"तुम संग एक संवाद के बाद / पृष्ठों पर उभरने लगती हैं / सकारात्मक कविताएँ / निखरने लगते हैं उदासी के घने साये / छा जाता है स्याह जीवन में / इंद्रधनुषी फाग।"

प्रेम में डूबी स्त्री को प्रेम के अतिरिक्त और कुछ दीखता ही नहीं। वह प्रेमास्पद से नहीं, उसके प्रेम से प्रेम करती है–

"मुझे तुम से नहीं / तुम्हारे प्रेम से प्रेम है / तुम खुद को–प्रेम से नहीं कर पाते हो अलग / और अर्जुन के लक्ष्य सदृश्य / मुझे दीखता है बस प्रेम।"

स्त्री हर काल, हर उमर में बनी रहना चाहती है प्रेयसी। वैवाहिक जीवन उसके लिए विडंबना है, जिसमें हैं "गृहस्थी की उलझने / पौरुष दम्भ से जूझती पति की लालसाएँ...। "जबकि ये चाहती हैं–"कि बची रहे जीने की ख्वाइशों की जगह / यांत्रिक जीवन से परे / बनी रहे नींदों में ख्वाबों की जगह।" नारी विमर्शवादी अनामिका कहती हैं– "बच्चे उखाड़ते हैं / डाक टिकट / पुराने लिफाफों से जैसे– / वैसे ही आहिस्ता–आहिस्ता / कौशल से मैं खुद को / हर बार करती हूँ तुमसे अलग"!

अनामिका जी भूल गईं कि प्रेम संबंधों को जोड़ता है, उखाड़ता नहीं। खटास से भरे होते हैं प्रेम विहीन सम्बन्ध। पर समय बदल रहा है। अलग कर लेना सरल हो चुका है। सुलभ हैं "मनचाहे साथी" जिनकी "प्रेमिकाएँ / कभी बूढ़ी न हुईं / साल दर साल बीतते / वर्षों बाद भी रहीं प्रेमी के दिल में / स्मृति में कमसिन, कमनीय / उस उम्र की तस्वीर बन कर / महकती रहेंगी वो स्त्रियों / किताबों में रखे सुर्ख गुलाब की तरह।" सीधी बात है विवाहिता स्त्री की उलझनों से मुक्त, कमनीय जीवन बिताया जाय। फिर परिवार का क्या होगा?स्त्री पुरुष का मिलन नैसर्गिक है–कुछ नैसर्गिक आवश्यकताओं की पूर्ती के लिए। 'अतृप्त बाँहों की गंध' से कहीं अधिक गंधमयी सुगन्ध से प्लावित जीवन।

डॉ0 पद्मजा शर्मा को दिए साक्षात्कार में प्रसिद्ध कथाकार साहित्यभूषण सूर्याबाला ने कहा...."देह पर आकर स्त्री मुक्ति का सपना टूट जाता है और एवज में बाजार की गुलामी मिलती है, स्त्री को। पुरुष से मुक्ति की कामना पुरुष वर्चस्वी बाजार की दासता से आ जुड़ती है। स्वयं को वस्तु (कमोडिटी) बनाने के विरोध को लेकर चलने वाली स्त्री आज स्वयं अपने शरीर की सबसे अनमोल पूँजी को वस्तु (कमोडिटी) बना कर बाजार के हवाले कर रही है"। यामिनी का कवि, वस्तु या कमोडिटी के जंजाल से बचा कर प्रेम की शुचिता को बनाए रखना चाहता है। यद्यपि वह चूकता नहीं प्रश्न उठाने से ... "मेरी छवि, मेरे बिम्ब और संकेतों में / गर तुम बांच नहीं सकते प्रेम / तो कैसा है तुम्हारा प्रेम / और कैसा समर्पण / रास नहीं आ रहा है मुझे / तुम्हारा होकर भी, न होने का भाव"।

एक प्रश्न और... पत्नी बड़ी या प्रेमिका?। विमर्शवादी मंतव्य है कि पत्नियाँ कभी प्रेमिका नहीं बन पातीं। कंचन कुमारी कहती हैं "तुम्हारी दुनिया में पत्नियाँ प्रेमिकाएँ नहीं होती। पत्नियाँ नहीं पहुँचती चरमसुख तक / यह हक है सिर्फ प्रेमिकाओं का / पत्नियाँ डरती है तुम्हारे ठुकराने से, / प्रमिकाएँ नहीं डरा करती / ,वहाँ होता है विकल्प / सदैव किसी और साथी का.... अर्थात सब कुछ अस्थायी है। एक देह का चरमसुख नहीं दे पाया, तो दूसरा सही, दूसरा नहीं तो तीसरा। प्रेम न हुआ तीहर है, जब चाही बदल ली। फिर यह कहना व्यर्थ है कि प्रेम में पड़ी स्त्री के मन में, दिल की गहराई में, उनींदी आँखों में हर पल हर क्षण प्रेमी की सुखद छुअन के एहसास भरे होते हैं। क्या जरूरत थी कबीर को यह कहने की "प्रेम न बाड़ी ऊपजे, प्रेम न हाट बिकाई, राजा परजा जेहि रुचे, सीस देहि ले जाई"। शायद आयातित आधुनिकता और बाजारी संस्कृति में बुधिया गए हैं कबीर। कोरोना संक्रमण से हाल ही में दिवंगत हुए जाने–माने साहित्यकार प्रभु जोशी ने अपने अंतिम लेख में कहा कि "मेरा शरीर मेरा" जैसा नारा (स्लोगन) अश्लील साहित्य के व्यवसायियों की कानूनी लड़ाई लड़ने वाले वकीलों ने दिया था। उसे हमारे साहित्यिक बिरादरी में राजेन्द्र यादव ने उठा लिया और लेखिकाओं की एक बिरादरी ने अपना आप्त वाक्य बना लिया"। विमर्शवादी मंतव्य को स्पष्ट करते हुए कवि का कहना है कि पत्नियों के लिए–

"मन चाहे स्पर्श, आंलिंगन / चरम उत्कर्ष के वह पल / सदा रहे कल्पना में ही / कभी उतर नहीं पाते वास्तविकता के धरातल पर"।

देहातीत संबंधों की बात सिमट कर रह जाती है चरमसुख और प्रणयी की मुलायम छुअन में। विमर्शवादियों की ऐसी बातें कवि ने बहुत ही संयत और शालीनता के साथ स्पष्ट की हैं। ये नारेवाजी से कहीं

अधिक शिष्ट और सार्थक हैं। उसके लिए प्रेम तर्क–कुतर्क का विषय नहीं है "एक बारगी प्रेम–/मौन से जीत जाता है/ किन्तु तर्क से जाता है हार"। कवि अनभिज्ञ नहीं है गृहस्थ जीवन की सुखानुभूति से पढिए 'सफरनामा' या 'पुस्तैनी घर' जैसी मार्मिक कविताएँ। 'गंतव्य' नामक कविता का माधुर्य ही अलग है– "प्रेममय मेरे मन का/तुम ही हो गंतव्य/मेरी तृप्त कामनाओं का/तुम ही तो मंतव्य हो/प्रेम मिश्रित मुस्कान का/क्या मैं प्रतिदान दूँ/उन्मुक्त हँसी के बदले/कहो तो प्राण दूँ।" प्रेम में एकाकार होना आवश्यक है। नहीं चाहिए दान–प्रतिदान। खलील जिब्रान कहते हैं "प्रेम की कोई आकांक्षा नहीं होती, सिवाय इसके कि उसकी सम्पूर्ति हो। अगर तुम आकाँक्षाओं के साथ प्रेम करते हो, तो करो उनकी पूरी वेदना और नाजुकी के साथ"। कवि का कथन है "सफर पर चलते चलते/अब महसूस ये होता है कि तुम होने लगे हो मुझ जैसे/और मैं–मैं रही/अपनी सी ही/उम्र के इस मोड़ पर आकर एक हो गए हैं हम दोनों के चश्में/और–नजरिया भी"। प्रेम की सबसे बड़ी बाधा है 'मैं' (अहम).. (जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं) खलील ने कहा "तुम एक साथ पैदा हुए और इस से भी अधिक एक साथ ही रहोगे सदा, किन्तु खालीपन भी रहे तुम्हारे एकत्व में। दोनों एक दूसरे को प्यार करो लेकिन, प्रेम का कोई बंधन ना बाधें : बल्कि इसे अपनी आत्माओं के किनारों के बीच एक बहते हुए सागर के समान रहने दें"। कविताएँ और भी हैं, विविध विषयों पर। लेकिन जिनमें प्रेम की प्रतीति है उनकी मिठास ही कुछ अलग है। प्रेम भी ऐसा जिसमें मिलन और विरह की धूप–छाँह है। विरह में शोक नहीं, मिलन की प्रत्याशा के श्लोक हैं।

अरे! प्रेम तो मृदुल और मधुर होता है। इसकी अगवानी में बिछ जाते हैं सैकड़ों इंद्रधनुष। हजारों सुकुमार पुष्प जिनकी पंखुरियाँ कुचल कर रख देतीं हैं हीरे के शिलाखंड (हीरे–सा हृदय हमारा कुचला शिरीष कोमल ने ....प्रसाद)। यामिनी की कविताओं में यदि प्रेम का स्पर्श न होता, तो शिलाएँ कैसे भर पातीं मुस्कान। इन कविताओं में इतनी "हिमशीतल प्रणय अनल" है कि हिमवंत पिघल कर पानी–पानी हो जाते हैं।

प्रसाद गुण से सम्पन्न सरल, सहज सम्प्रेषणीय भाषा है यामिनी की कविताओं की। यहाँ आपको मिलेंगे.... अनुभूति के हलन्त, आवेग के अनुस्वार, नेह का उजास, किरकिराता अकेलापन, संवेदना की वीथिका या गवाक्ष, यकीन की चादर, मृगतृष्णा के लंगर, पीड़ा के पिरामिड आदि। कवि ने अज्ञेय से उधार ले लिया है उनका वाक्य, थोड़े बदलाव के साथ–'दु:ख ही सबको मांजता है" (दु:ख सब को माँजता है... अज्ञेय)। ऐसा कहना कि "हर स्त्री लिख कर लाती है लेखे में/ कोई न कोई अपजस अपने नाम" बात के साधारणीकरण का संकेत देता हैं। अच्छा होता यदि "प्रिय के जाने पर मन का बुद्ध होने" की जगह, यशोधरा के मन की बात कही होती। उस निर्दोष को भरी नींद में छोड़, सिद्धार्थ तथागत बनने निकल पड़े। एक स्त्री ही उसकी वेदना को गहरायी से समझ सकती है।

कुछ भी हो कवयित्री ने अपने प्रथम प्रकाशन के माध्यम से सिद्ध कर दिया कि उसकी कविताएँ बाध्य करती हैं शिलाओं को मुस्काने के लिए। सार्थक है इनका श्रम और उसकी सारस्वत साधना। आने वाली सुबह और भी उजली होगी, जब शिलाओं की कोख से दूधिया झरने, झर–झर करते गुनगुनायेंगे कवयित्री की प्रेमासिक्त कविताएँ।

dk0; l xg] dof;=h&;kfeuh u;u xIrk] idk'kd&i[kjxt] ub fnYyh

डॉ0 अचल भारती
सोहानी, बाँका
मो0–7549986602

माँ–भारती

कोई कहे बोली मुझे
कोई हिंदी या हिंदवी
तो कोई हिन्दुस्तानी
कहे भी कोई यहां
भाषा–भारती
हूं मगर समवाहिका संस्कृति की
चल पड़ी हूँ अकेली
सूने–डगर
मैं हूँ राष्ट्र–भारती।
कबतक मुझे छोड़कर
खाई में गिरना तुम्हें
अनकहे वक्त की गिरफ़्त में
और क्या–क्या खोना तुम्हें
भ्रम की वेला लिए

यूं गगन को आकार न दो
अज्ञानता के अंधेरे
अनगढ़ शब्दों से
कोई चमत्कार न दो
अंधेर–नगरी बसे
किसी मुकम्मल राष्ट्र को
नामे–अवतार न दो
अब भी पहचानो मुझे
मैं मौन राष्ट्र–भारती
हां! हां!
तुम्हारी अर्चना की
सत्व कामना की
मैं हूं मां–भारती।

भूत

सिंहासन चढ़ने को आतुर
नज़रें किसकी ललचाई
असली भारत जन–जन में
है ले रहा वह अंगड़ाई

अपना–पराया कौन करे
मचले सत्ता का कोण बने
राष्ट्र–चरित नंगा दिखता
कबतक जन–गण मौन रहे

जो जन–मन को बांट रहे
जाति–धर्म की भाषा से
वो कैसे लड़ सकते हैं
वर्ग–भेद दुहशासा से

अमन–चैन की बंशी कहां
जब कितने हनुमान यहां
बुजदिल, कायर, अतिबोले
कोटि–न्यारे भगवान यहां

बल से बड़ा उत्तेज जहां
बढ़कर ज्ञानी से लाठी
उस मुल्क में साये चलता

भूतों की काया–काठी
हिन्दु–मुस्लिम का ले जोर
कट्टरता में दोनों कोर
ढहता–बहता नजर आता
ज्यूं ईश–अल्ला आदमखोर

कुर्सी लोभी दांत निपोड़े
मन के काले मतवाले
जन–धन के रार–लुटेरे
उल्टीधारा के हड्ड नाले

देश कबसे अमन माँगता
मार्ग–दर्शन–करम माँगता
प्यार मुहब्बत की खातिर
इंशा–पूरित चमन मांगता

समीक्षा

अनुभव के धरातल से
प्रस्फुटित कहानियां

डॉ0 संजय चौहान
(हिन्दी विभाग)
स.रा.म.महा., अमृतसर
मो.–9478440472

राम नगीना मौर्य ऐसे कहानीकार हैं जो जीवन के सुख–दुःख, आशा–निराशा, उतार–चढ़ाव में रचे बसे अनुभवों को अपनी कहानियों में उकेरते हैं। मध्य–वर्गीय जीवन–शैली और समस्याओं से भली–भांति परिचित हैं। यही कारण है कि इनकी कहानियों में मध्य–वर्ग को विविधता से चित्रित होने का पर्याप्त अवसर मिला है। कार्यालयी जीवन के आचार–विचार और मानसिकता को अधिक स्वर मिला है। इस कारण पाठक इनकी कहानियों को अपने अधिक नजदीक पाता है और कहानियों से जुड़ता भी है। लेखक बड़ी ही सरलता और सहजता के साथ अपनी बातें पाठक के सम्मुख रख पाता हैं। राम नगीना मौर्य का कथा–संग्रह ^eu ckgfe;u* कथ्य और अभिव्यक्ति की दर्षष्टि से अतीव महत्वपूर्ण है। संग्रह में कुल 14 कहानियां हैं, जो विविधता से कथ्य एवं कलेवर के साथ प्रस्तुत हुई हैं। इनकी कहानियों के पात्र अलग–अलग संदर्भो में जनमानस की भावना को व्यक्त करने में सार्थक एवं समीचीन हैं।

^xkn* कहानी में भावात्मक संबंधों की सुंदर अभिव्यक्ति है। बच्चों को जहॉ अपने मां–बाप के साथ भावनात्मक लगाव अपरिहार्य है वहीं मां–बाप भी अपने बच्चों के साथ आत्मीय संबंध की अपेक्षा और अनिवार्यता को जीवंत रखते हैं। भागमभाग की ज़िन्दगी में प्रत्येक व्यक्ति सुकुन के साथ कुछ पल जीना चाहता है। अपनी आप बीती को किसी के साथ साझा करना चाहता है। इसके लिए ऐसे इंसान की आवश्यकता होती है, जो उसकी भावना को समझ सके। उसके सुख–दुःख का हमजोली बन सके। इसके लिए पति–पत्नी सर्वाधिक अनुकूल एवं उपयुक्त सिद्ध होते हैं। बच्चे भी अपनी दिनचर्या को मां के सम्मुख रखने में सर्वाधिक सहज अनुभव करते हैं। मां की गोद सर्वाधिक सुकून और आरामदायक है। पति–पत्नी कुछ पल हेतु एक दूसरे के सानिध्य में अपनी भावनाओं का आदान–प्रदान कर हल्कापन महसूस करते हैं।

समय के साथ ही जीवन में नये–नये अनुभवों और विपरीत परिस्थितियों के कारण अनेक समस्याओं से साक्षात्कार होता है। निःसहाय, लाचारी और विवशता के कारण व्यक्ति निराशा के जंजीर में जकड़ता जाता है। उसे कुछ भी नहीं सूझता, परन्तु भारतीय दर्शन और अध्यात्म को माने तो जीवन में घटित होने वाली प्रत्येक घटनाएं पूर्व नियोजित एवं निर्धारित हैं। इनसे हम कब और कैसे निकलेंगे यह हमारे ऊपर निर्भर करता है। ^enn* कहानी और उसका पात्र सोमारू इन्हीं परेशानियों का शिकार है। बीमार पत्नी के इलाज, मृत्यु से लेकर अंतिम संस्कार तक पैसे के अभाव में उसके मन में क्या–क्या विचार आते हैं?अलग–अलग लोगों में मानवीयता किस रूप में जागृत होती है। यहां स्पष्टतः देखा जा सकता है।

^Hkw l/kkj* कहानी दैनिकी जीवन पर केन्द्रित है। दैनिक अखबारों में छपने वाली साहित्यिक एवं स्थायी स्तम्भों के अभ्यस्त पाठक के बहाने हमारे आस पास घटित होने वाली विविध घटनाओं, समाज में विचरने वाले लोगों की मानसिकता की बारीकियों को लेखक ने सूक्ष्मता से अध्ययन एवं चित्रित किया है। बुर्जुआ और समकालीन सोच, मानसिकता, रहन–सहन और पहरावा के ऊपर संकुचित मानसिकता वाले व्यक्तियों का आधारहीन, तथ्यहीन दलील को भी यहां देखा जा सकता है। विकास और शहरीकरण के नाम पर असंख्य पेड़ बलिदान हो चुके हैं। परिणामस्वरूप असंतुलन का दंश संपूर्ण विश्व झेल रहा है। इस पर लेखक का चिंतित होना अनिवार्य है।

^x.k&ifr dk [ky^ कहानी आपसी संबंधों की प्रगाढ़ता, मेल–मिलाप की सक्रियता को बयॉ करती है। विश्वास और संशय के खींचतान में व्यक्ति पिसता, उससे संघर्ष कर बाहर निकलने का प्रयास करता है। अविश्वास के कारण आपसी लगाव की गांठ प्रायः कमजोर होती दिखती है। लेखक स्वयं लिखता है –''जो आप पर विश्वास करते हैं, उन्हें स्पष्टीकरण देने की जरूरत नहीं और जो आप पर अविश्वास करते हैं, उन्हें आप लाख विश्वास दिलाइए, परन्तु वे विश्वास करने वाले नहीं।'' असल में जिन्दगी का गण–पूर्ति यही है।

आज के मशीनी युग में भाग–दौड़ अधिक है। व्यक्ति मशीनों से संचालित–नियंत्रित–निर्देशित हो रहा है। फिर भी मानवीय संवेदना अभी जिन्दा है। अपने–पराये के सुख–दुःख से प्रभावित होने वाला व्यक्ति अपनी संवेदना से नियंत्रित हो रहा है। ^ckyr iRFkj^ एक प्रतीकात्मक कहानी है। जहॉ पत्थर और छोटे बच्चे की संजीदगी के माध्यम से समाज सापेक्ष भाव–विचारों, कर्म एवं क्रिया कलापों की ओर संकेत हुआ है। निर्जीव पत्थर, पेड़–पौधे, फूल–फल, जंगल–पहाड़ सभी किसी न किसी रूप में हमारे सुख–दुःख, खुशी–आनंद के साथी हैं, परन्तु आवश्यकता है उनके अन्दर से निकलने वाली ध्वनि–प्रतिध्वनि को सुनने और समझने की। भागदौड़ की जिन्दगी में इन्सान भागता जा रहा है। परन्तु जब निकटता से उन्हें जाने, सुने, महसूस करें तो उसकी अलग ही आनंद एवं सुखानुभूति है।^ePNj egkRE;^ व्यंग्य रचना है। लेखक ने मच्छरों की आपसी बातचीत (आवाज) के माध्यम से इंसानों के आपसी संबंध, समझ और जागरूकता पर व्यंग्य किया है। सीनियर मच्छर और जूनियर मच्छर आज के युवा और अनुभवी व्यक्ति के बीच की सोच और समझ को उजागर करते हैं। युवा वर्ग जहां जोश

और उतावलापन से लबरेज है तो वयस्क वर्ग अपनी समझ और अनुभव से परिपूर्ण। लोक व्यवहार में मिलने वाले व्यक्तियों को लोभ और स्वार्थ के लिए आपस में संघर्ष करते दर्शाता है तो मच्छरों को एकजुटता से इंसान पर हमला करते। यहाँ लेखक मच्छरों के माध्यम से धर्म, जाति, सम्प्रदाय के नाम पर बंटे लोगों में व्याप्त अनाचार, दुराचार का पर्दाफाश करता है। जबकि मच्छर निरीह एवं अविवेकी होकर भी एकजुटता का परिचय देते हुए अपनी उपस्थिति दर्ज करवाते हैं।

समकालीनता के प्रभाववश हमारी जीवन शैली सोच एवं चिन्तन में अत्यधिक बदलाव आया है। विकास और विकासशीलता की दौड़ में काफी आगे निकलने का दम्भ भरते हैं, परन्तु आपसी संबंधों की गॉठ नाजुक हो चुकी है। रिश्ते–नातेदारों के आत्मीय संबंध, लगाव, मेल–मिलाप सूखा पड़ गया है। स्वयं को वैश्विक धरातल पर पहुंचाते–पहुंचाते हम कुंठित और आत्म केन्द्रित सा हो गये हैं। ^?kM+h^ कहानी आधुनिक, उत्तर आधुनिक जीवन शैली की प्रस्तुति है। जिसमें बच्चों द्वारा 'घड़ी' जैसे उपहार के माध्यम से बिखरे संबंधों को जोड़ने का प्रयास है। नौकरी–पेशा की विवशता में अपनों से दूर हुए लोगों को आपस में पुनः जोड़ने का सार्थक प्रयास है।

उत्सव ही जीवन है। मानव जीवन में त्यौहारों–उत्सवों का होना अति आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है। उत्सव एवं त्यौहारों के कारण जीवन में उमंग, उत्साह, आनंद का संचार होता है। उत्सव ही जीवन को सरस, सहज बनाता है। इसके बिना व्यक्ति कुंठित एवं नीरस बन जाता है। भारतीय जीवन पद्धति उत्सव पर आधारित है। छोटी–छोटी घटनाऍं, हर्षित क्षण को हम जीवंत कर सार्थक एवं आनंदमयी बनाते है। ^'kxqu^ कहानी में हमारे जीवन के इन्हीं उत्सवों की अनिवार्यता को वर्णित किया गया है। साथ ही कृत्रिमता का निषेध कर प्रकृति की ओर उन्मुख होता है। कहानी के बहाने लेखक पर्यावरण संरक्षण के प्रति संजीदा दिखता है।^xkft l;u^ कहानी समकालीन जीवन की यथार्थता पर केन्द्रित है। पुरुष प्रधान समाज की घृणित, दूषित मानसिकता का यहां नंगा चित्रण है। कामकाजी युवतियों का किन–किन स्तरों पर अपने बॉस, सहकर्मियों द्वारा मानसिक–शारीरिक शोषण जारी है जो यहां देखा जा सकता है। पिता तुल्य व्यक्ति समाज में नरभक्षी बन युवतियों को नोच–खाने को तत्पर हैं। कहानी की पात्र–अनन्या ही नहीं बल्कि समाज की असंख्य अनन्या इस घृणित मानसिकता और कुत्सित विचारों का शिकार हो रही हैं। पद–प्रभुत्व, धन और झूठे रुतबे का लालच देकर युवतियों का शोषण हो रहा है। ऐसे में भारतीय समाज की निकृष्ट सोच और स्वरूप उजागर होती है।

समस्याओं से संघर्ष करता व्यक्ति आलंबन चाहता है। जब दो या उससे अधिक व्यक्ति समान समस्याओं के शिकार होते हैं, तो उनमें एक अपनापन का भाव जागृत होता है और विश्वास की नींव की बुनियाद सृजित होती है। हताशा–निराशा के बीच उनमें एक मजबूत संबल का निर्माण होता है, और फिर व्यक्ति लाचार–मजबूर होकर भी सशक्तता से समस्याओं का सामना करता और उसका निदान ढूंढ़ता है। ^nks Qfj;knh* कहानी और उसका पात्र कमल नयन मानवीय संवेदना को जीवंत करता है। ^^xyrQgeh^ कहानी में बाहरी दुनिया की चकाचौंध ही सामाजिक महत्ता, रुतबा का होना, एक भ्रम के रूप में दर्शाया गया है। जिसके पास बड़ी–बड़ी गाड़ियाँ, बड़े–बड़े मकान हैं, वह सम्पन्न है, प्रभावशाली है। जबकि आंतरिक रूप में वैचारिकता के स्तर पर यह अत्यन्त कमजोर क्यों न हो, परन्तु इनके शानो–शौकत के प्रति लोगों में गलतफहमियां अधिक हैं।

भागमभाग की जिन्दगी ने इन्सान को भावना शून्य बना दिया है। काम के बोझ तले दबा व्यक्ति गुस्सा, आक्रोश, असंतोष जैसे अनेक असंगत, अमानवीय अवगुणों का शिकार हो रहा है। वाह्य दबावों का गुस्सा वह घर में होने वाली छोटी–छोटी गलतियों पर निकालता है। यह भी सच है कि इसका नुकसान स्वयं उसी का है। ^f'kdkj^ कहानी समकालीन जीवन की असंगतियों के कारण से कुंठित होते स्वभाव और व्यवहार का चित्रण करता है।

^ipiu dgkfu;k^ जीवन में होने वाले परिवर्तन की ओर संकेत करती हैं। जब व्यक्ति किसी नये काम, नयी मिली जिम्मेदारी को पूरा करने चलता है तो नाना प्रकार के विचार आशंकाएं मन में उठती–मिटती हैं। डर, आशंका से ग्रसित व्यक्ति अपना पांव पीछे खींचता है। परन्तु जैसे ही व्यक्ति उस काम को तन्मयता से करता है, तो कोई न कोई राह अवश्य मिलता है। सफलता अवश्य मिलती है।

संग्रह की प्रायः सभी कहानियां व्यक्तिगत जीवन में घटने वाली घटनाओं पर आधारित हैं, चाहे वह छोटी घटना हो या बडी। ये कहानियां लेखक की अपनी व्यक्तिगत नहीं, बल्कि पाठक जितनी तन्मयता से इन्हें पढ़ता है, उसमें रमता जाता है। फिर ये कहानियां पाठक की बन जाती हैं। राम नगीना मौर्य की कहानियां प्रायः जमीनी हकीकत बयां करने में सफल एवं सशक्त हैं। इनकी कहानियों की लोकप्रियता और सफलता का मूल कारण भी जनमानस की मनोभावों को व्यक्त करना है। सहृदय पाठक इन कहानियों को अपने आस–पास के परिवेश के साथ जोड़कर देखता–पढ़ता और जीवंतता प्रदान करता है। ^eu ckgfe;u^ निश्चय ही एक महत्वपूर्ण कहानी संग्रह है।

ildk'kd&jf'e ildk'ku] y[kuÅ

समीक्षा

असगर वजाहत कृत "जिस लाहौर नई देख्या ओ जम्याइ नई" नाटक का रंगशिल्प

असद खान, शोध–छात्र
हिन्दी विभाग, डॉ. बा. आंबेडकर
मराठावाड़ा विश्व., औरंगाबाद
मो0–7276704045

नाट्य संवेदना का संवाहक तत्व रंगशिल्प कहलाता है। नाटककार अपने भाव, विचार तथा कामनाओं का दर्शकों तक प्रभावी एवं कलात्मक रूप में संप्रेषित करने के लिए जिन रंगतत्वों का प्रयोग करता है, उसे ही समन्वित रूप में नाट्यशिल्प तथा रंगाशिल्प कहा जाता है।

असगर वजाहत एक कुशल रंगशिल्पी हैं। इस नाटक में निर्देशक तथा अभिनेता की प्रतिभा को निखारने की अभूतपूर्व क्षमता है। ' जिस लाहौर देख्या ओ जम्याइ नइ' इस नाटक का रंगशिल्पगत अध्ययन करते समय शिल्प के प्रमुख तत्वों को देखना परमावश्यक है। वैसे देखा जाये तो नाटकों के शिल्प के तत्व के संदर्भ में विचारकों में विभिन्न मत–मतांतर हैं। भारतीय आचार्यों ने नाटक के तीन अनिवार्य तत्व माने हैं–कथावस्तु नेता और रस। पाश्चात्य आचार्यो ने छः तत्व माने हैं कथावस्तु, चरित्र, देशकाल, संवाद, शैली और उदेश्य। दोनों ही दृष्टियों को अपनाते हुए उन्होंने स्थिति और प्रसंग के अनुकूल अपने नाटक की रचना की है; और नये प्रयोग किए हैं।

dFkkoLrq

भारतीय तथा पाश्चात्य आचार्यों ने कथावस्तु को नाटक का अनिवार्य तत्व माना हैं। और यह सही भी है, क्योंकि कथावस्तु ही नाटक का प्रधान या अनिवार्य तत्व होता है। यही नाटक का मूल ढांचा तथा आधार होता है। अरस्तु ने नाट्य कथानाक के आयाम के विषय में यह निर्देश दिया है–"वह न इतना सूक्ष्म होना चाहिए कि प्रेक्षक के मन में उसका स्वरूप ही स्पष्ट न हो सके और न इतना विस्तृत कि वह उसे समग्र रूप में ग्रहण ही न कर सके" असगर वजाहत 'जिस लाहौर नई देख्या ओ जम्याइ नइ' यह नाटक सोलह दृश्यों में विभाजित किया गया है। यह नाटक कथानक की शिल्पविधि का पूर्णतः निर्वाह करता है। इन नाटक में नाटककार ने विभाजन के समय सिंकदर मिर्जा अपने परिवार के साथ लाहौर आते हैं। यहां जिस हवेली में वह आते हैं वहां पहले से ही एक बुढ़िया रहती है। जो अपने लापता बेटे का इंतजार कर रही है। लेकिन कुछ व्यक्ति इसका विरोध करते हैं कि यह हिन्दू बुढ़िया यहां लाहौर में अब नहीं रह सकती। बुढ़िया अपने सहज स्वभाव के कारण मोहल्ले में सबकी मदद करती रहती है। यही कारण है कि बुढ़िया को सभी मोहल्ले वाले अपने घर–परिवार का सदस्य मानते हैं और उन्हें माई कहते हैं। माई की मृत्यु हो जाने के बाद वह उसे हिन्दू धर्म के रीति रिवाज के अनुसार ही उनका क्रिया–कर्म करते हैं। इसका मार्मिक चित्रण असगर वजाहत ने किया है। प्रस्तुत नाटक में विभाजन के बाद जान और माल की हानि होने के कारण मानसिक रूप से जनता विभाजन की यातना से लगातार पीड़ित और दुःखी हैं, इस विवशता को सिकंदर मिर्जा और उनके परिवार के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है साथ ही साथ नष्ट हो रही मानवता एवं धार्मिकता और मानवीय संबंधों का भी चित्रण किया गया है।

चरित्र–चित्रण

अगर वजाहत के प्राय सभी पात्र अपनी–अपनी स्थितियों में स्वाभाविक प्रतीत होते है। उनके पात्र वस्तुगत तथ्य को पूरी सहायता से प्रस्तुत करते हैं। 'जिस लाहौर नई देख्या ओ जम्याइ नइ' इस नाटक में लगभग 19 पात्र हैं। नाटककार ने कथावस्तु के धरातल के अनुरूप ही पात्रों का निर्माण किया है। कथावस्तु के आधार पर पात्रों का चरित्रांकन नाटक को गरिमा प्रदान करता है। नाटक के सभी पात्र अपने वर्ग का तथा वर्ग की मानसिकता का प्रतिनिधित्व करते हैं। वजाहत जी ने घटनानुरूप पात्रों की सृष्टि की है।

ie[k ik=

'जिस लाहौर नई देख्या ओ जम्याइ नइ' इस नाटक के प्रमुख पात्र निम्न प्रकार हैं–

1 jru dh ek ¼ekb½

अगर वजाहत के 'जिस लाहौर नई देख्या ओ जम्याइ नइ' इस नाटक की प्रमुख और केंद्रीय पात्र माई है। माई एक ऐसी बूढ़ी औरत है जो अपने सहज और सीधे स्वभाव के कारण लोगों की मदद करने पर विश्वास करती है। माई का चरित्र उदारता, सहिष्णुता, मानवता और भाईचारे पर आधारित है। माई को अपने धर्म पर पूरी आस्था है। वह किसी भी स्थिति में अपना धर्म परिवर्तन नहीं करती है। वह लाहौर में अकेली हिन्दू बची हुई है। लेकिन उसने अपने रीति रिवाज नहीं छोड़े हैं। वह रोज रावी नदी में नहाने जाती है और अपने धर्म पर उसे पूरा विश्वास है। वह मिर्ज़ा परिवार और उस महल्ले के अन्य व्यक्तियों के साथ अपना दिवाली का त्यौहार भी मनाती है। माई की सिकंदर मिर्जा के परिवार से निकटता बढ़ती है और वह उनके परिवार की एक सदस्य बन जाती है। माई को घर से निकालने के लिए पहलवान मिर्ज़ा साहब को और उनके परिवार के अन्य सदस्यों को धमकियां भी देता है लेकिन मिर्ज़ा माई की हिफाजत करते हैं। माई सोचती है कि उसके कारण मिर्ज़ा परिवार को कोई तकलीफ न हो इसलिए वह किसी को कुछ न बताए ही अपना सामान लिए दिल्ली जाने के लिए निकलती है। माई की मृत्यु हो जाने के बाद सभी उनका क्रिया–कर्म हिन्दू धर्म के रीति–रिवाज के साथ ही करते है। मौलवी इकरामउद्दीन भी माई के चरित्र से परिचित है। वह माई को नेक औरत कह कर माई को महत्व देता है। माई का क्रिया–कर्म उनके हिन्दू धर्म के अनुसार करने का निर्णय देता है।

2 ekyoh bdjkemíhu

मौलवी इस नाटक के मुख्य पात्रों में से एक है। मौलवी सत्य तथा ईमानदार है। वह इस्लाम धर्म का प्रतिनिधित्व करता है। मौलवी सीधे सच्चे धर्म पर विश्वास करने वाला पात्र है। वह धर्म की राजनीति से दूर है। मौलवी धर्म के द्वारा अर्जित सत्ता का हिस्सा नहीं हैं और यही कारण है कि धर्म को धर्म की तरह लेता है। धर्म की राजनीति नहीं करता। मौलवी अपने धर्म का जितना मान सम्मान करता है वहीं दूसरों के धर्म के प्रति भी उतना ही मान सम्मान देने की बात करता है। मौलवी के चरित्र के संबंध में कहा जाता है "मौलवी इकरामउद्दीन है जो धर्म को केवल कुरान और हदीस के आधार पर व्याख्या करता है। इसके अंतर्गत इस्लाम धर्म का सहिष्णु, मानवीय और दूसरे धर्मो का आदर सम्मान देने वाला स्वरूप उभरता है।" माई

पर पहलवान अत्याचार करने की कोशिश करता है धर्म के आधार पर और उन्हें लाहौर से भी निकालना चाहता हैं। लेकिन मौलवी उस बुढ़िया के संबंध में जानकारी प्राप्त करने के बाद पहलवान को उसपर अत्याचार करने से मना करता है। क्योंकि वह बुढ़िया विधवा है और इस्लाम धर्म में विधवाओं के लिए क्या विशेष स्थान है वही स्थान वह रतन की मां याने माई को भी देने की बात करता है। माई की मृत्यु हो जाने के बाद हिन्दू धर्म के रीति रिवाज न जानते हुए भी वह माई का हिन्दू धर्म के अनुसार क्रिया–कर्म करने का आदेश देता है। पहलवान धर्म के आधार पर अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहता है, लेकिन मौलवी उसे रोकता है।

3 ukfl j dk t eh

इस नाटक के एक पात्र नासिर काज़मी 35–36 वर्ष के व्यक्ति हैं जो अम्बाला से लाहौर आते हैं। नासिर साहब कवि हैं, उनके मन पर बहुत ही बुरा प्रभाव हुआ है विभाजन का। वह रात–रात भर लाहौर के रास्तों पर कुछ चीजें खोजने की कोशिश करता है जो उन्होंने अम्बाला में देखी थी। नासिर के माध्यम से जीवन और जगत के संबंधों को स्थूल और भौतिक परिस्थितियों को समझा जा सकता है।

फ़क्कड़, मस्ती, उमंग, उल्लास, गहरा दुःख, यादों के जख्म, विस्थापना की निरर्थकता का भाव, नई दृष्टि से संसार को समझने की लालसा नासिर के चरित्र के रंग हैं। नासिर मानवता के समर्थक हैं और मनुष्य को धर्म, जाति, देश, समाज, भाषा आदि से उंचा और श्रेष्ठ मानते हैं। नासिर मानवता के प्रतीक हैं। नासिर एक ऐसे समाज की उपज हैं जहां हिन्दु–मुस्लिम, सिख और ईसाई साथ–साथ रहते और समाजिक जीवन में अपनी भूमिकाएं निभाते आए हैं नासिर के लिए माई का लाहौर में रहना किसी तरह की चिंता का कारण नहीं है। बल्कि उनका वहां रहना वह अपने लिए बहुत महत्वपूर्ण मानता है क्योंकि माई उसे उसके अतीत से जोड़ती है। नासिर किसी तरह का भेद–भाव एवं जाति–पाति में विश्वास नहीं करते हैं। वह मानवता के प्रतीक दिखाई देते हैं। पहलवान माई के साथ अत्याचार करना चाहता है वह अपने स्वार्थ के लिए माई की हत्या करना चाहता है। लेकिन वह पहलवान को अपने विचारों से समझाने का प्रयास करते हैं जिससे उनके चरित्र पर ही प्रकाश पड़ता है। नासिर के विचार इस महाद्वीप में विकसित और स्थापित उन मूल्यों पर आधारित है जो धार्मिक, सहिष्णुता और मानवता को स्थापित करते हैं।

4 ;kdc igyoku

इस नाटक का अन्य एक प्रमुख पात्र याकूब पहलवान है। पहलवान लाहौर का एक व्यक्ति है जो धर्म के नाम पर लोगों को धोखा देता है। धर्म के आधार पर वह अपना स्वार्थ पूरा करने वाला व्यक्ति है। शहरे लाहौर के एक बहुत बड़े पूँजीपति रतन लाल जौहरी की मां लाहौर में अभी जीवित है यह सुनते ही पहलवान विचार करने लगता है कि बुढ़िया ने हवेली में बहुत सारी संपत्ति छुपा रखी होगी इसी कारण वह बुढ़िया की संपत्ति को लूट लेना चाहता है वह अपना स्वार्थ पूरा करने के लिए धर्म का आधार लेता है। पहलवान को अपना स्वार्थ पूरा न होने में सबसे बड़ी बाधा मौलवी ही दिखाई देता है। अतः वह अपनी स्वार्थीवृत्ति के कारण मस्जिद में मौलवी की हत्या कर देता है।

5 fl dnj fet k

असगर वजाहत के 'जिस लाहौर नइ देख्या ओ जम्याई नइ' नाटक के प्रमुख पात्र सिकंदर मिर्जा हैं। मिर्ज़ा साहब अपने परिवार के साथ लाहौर पहुंच जाते हैं। वह अपनी जमीन जायदाद, हवेली लखनऊ में छोड़ आए हैं उसके बदले उन्हें यहां लाहौर में एक हवेली एलॉट होती है जो पहले किसी रतनलाल जौहरी की थी। हवेली में रतन की मां को देखकर मिर्ज़ा साहब उसे बहुत समझाने का प्रयास करते हैं कि यहां अब लाहौर बन गया है। अब यहां आप के लिए कोई जगह नहीं हैं, लेकिन माई नहीं मानती वह वहीं रहना चाहती है। मिर्ज़ा परिवार के साथ माई की निकटता बढ़ती है और वह उनके घर की सदस्य बन जाती है। मिर्ज़ा, माई को अपने घर में रखते हैं उन्हें अपनी मां समझते हैं, लेकिन पहलवान अपने स्वार्थ के कारण उन्हें कई बार धमकियां देता है। फिर भी मिर्ज़ा माई को अपने साथ पूरी सुरक्षा में रखने का प्रयास करते हैं। जितेन्द्र विष्ट मिर्ज़ा साहब के चरित्र के बारे में कहते हैं–"रतन की मां को अपनी मां समझकर अपने साथ रखता है। इसके लिए उसे बहुत कुछ झेलना भी पड़ता है" माई की मृत्यु हो जाने के बाद सिंकदर मिर्ज़ा ही उनका अंतिम संस्कार करते हैं, उनके बड़े बेटे होने के अधिकार से।

lokn ;kt uk

प्रस्तुत नाटक के संवाद पात्रों के चारित्रिक विशेषताओं को प्रभावी ढ़ंग से व्यक्त करते हैं। सभी पात्रों के व्यक्तित्व के अनुरूप ही नाटक के संवाद विद्यमान हैं। पात्रों द्वारा अभिव्यक्त संवाद ही नाटक को प्रभावी तथा सशक्त बनाते हैं। यह संवाद पात्रों अंतर्वाह्य चरित्रों का उद्घाटन करने में पूर्णतया समर्थ है तथा नाटक की मूल कथावस्तु को स्पष्ट कर उसका विकास करने में सहायक भी है। इस नाटक के संवाद कहीं पर छोटे तो कहीं लम्बे हैं। छोटे तथा लम्बे संवाद अर्थपूर्ण तथा प्रभावी भी हैं और कथानक की मांग की पूर्ति करने में पूर्णतया सक्षम भी है।

विभाजन के बाद समाज में साम्प्रदायिकता की जड़ें बहुत गहरी रही हैं। हिन्दू मुस्लिम संघर्ष में तो इसका दानवी रूप प्रकट होता है। समाज को जाति के नाम पर, धर्म के नाम पर, प्रदेश के नाम पर बांटा जा रहा है। इसका चित्रण करने वाले भी कुछ संवाद नाटक में हैं। जहां मनुष्य मनुष्य को मारकर उसका अस्तित्व ही नष्ट करना चाहता है, वहीं एक दुसरे के प्रति प्रेम की भावना रखने वाले भी कुछ लोग हैं जिसमें आज भी कहीं मानवता बची हुई है, ऐसा दर्शाने वाले संवाद हैं साथ ही प्रेम तथा भाईचारे का चित्रण करनेवाले भी कुछ संवाद हैं। नाटक के कुछ संवाद ऐसा हैं जो धर्म–जाति, लिंग–भेद काला–गोरा आदि से अलग होकर मानवता को ही श्रेष्ठ दर्शाते हैं जैसे–'बेवा चाहे हिन्दू हो चाहे मुसलमान?ऐसे बहुत से हक बताये हैं जो तमाम इंसाानों के लिए हैं..... उसमें मजहब, रंग नस्ल और जाति को कोई फर्क नहीं किया गया"।

n'kdky ,oa okrkoj.k

आधुनिक हिन्दी नाटककारों ने देशकाल वातावरण को नाटक का अभिन्न तत्व माना है। नाटक की सफलता का एकमात्र आधार इसे ही स्वीकार किया है। सामाजिक, धार्मिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक सभी प्रकार के नाटकों के नाटककार को देशकाल और वातावरण के चित्रण का ध्यान रखना अपेक्षित है। यही तत्व हमें इस नाटक में देखने को मिलता हैं।

'जिस लाहौर नइ देख्या ओ जम्याइ नइ' यह नाटक दर्शकों पर अपना मौलिक प्रभाव छोड़ता है। यह नाटक मुख्यरूप से साम्प्रदायिकता पर प्रकाश डालता है, धर्म के वास्तविक स्वरूप और साम्प्रदायिकता का द्वंद्वभी नाटक का विषय बनता हैं मानवीय मूल्यों को धर्म, जाति, देश से श्रेष्ठ सिद्ध करने का वास्तविक तथा यथार्थ चित्रण

असगर वज़ाहत ने इस नाटक में किया है। वास्तव में यह नाटक सजग परिवेश का यथार्थ वर्णन करता है। नाटककार ने इस नाटक में देशकाल एवं वातावरण के अनुरूप कथ्य की संरचना की है। नाटक के गीत उस दृश्य पर विचार करने पर मजबूर कर देते हैं।

Hkk"kk

वज़ाहत जी की भाषा नाटक की स्थिति के अनुरूप ही अपना अनुकूल रूप ग्रहण करती है। उनकी भाषा में अभिनय की अपूर्व शक्ति है। उनका नाटक मंच के लिए है और उनकी भाषा मंच को शक्ति प्रदान करती है। इस नाटक की भाषा, भाषा नहीं वाचीय अभिनय है। नाटक में भाषा नहीं होती तो अभिनय होता है। भाषा को दृश्यता में परिवर्तित करने की क्षमता भी भाषा की दृश्यता में समाई रहती है। नाटक की भाषा, पात्रों के गुण, स्वभाव तथा परिस्थितियों के अनुकूल ही है। उनकी भाषा नाटक में विशेष उपयोगी तथा सार्थक बन पड़ी है। नाटककार असगर वज़ाहत की श्रेष्ठ भाषा शैली का उदाहरण दृष्टव्य हैं–"इसलिए कि रात में ही दुनिया के अहम काम होते। मिसाल के तौर पर फलों में रस पड़ता है रात को..... समंदरों में ज्वार भाटा आता है रात को..... खुशबुएं रात को ही जन्म लेती हैं। फरिश्ते रात को ही उतरते हैं... आपकी बातें मेरी समझ में तो आती नहीं। इसका यह मतलब तो नहीं की चाय न पिलाओंगे।" नाटककार ने सरल तथा स्वाभाविक भाषा– शैली का प्रयोग किया है।

नाटककार ने पंजाबी भाषा शैली का प्रयोग किया है। नाटक में यथास्थान अरबी और उर्दू की भाषा शैली को हिन्दी भाषा शैली में प्रयुक्त करके अभिव्यक्त करने का सफल प्रयास किया है। इस नाटक की पंजाबी भाषा सहज तथा व्यवहारिक है। उन्होंने नाटक में व्यावहारिक खड़ी बोली और पंजाबी भाषा का प्रयोग किया है। वे कहीं भी भाषा में चमत्कारिता या जटिलता लाने का प्रयास नहीं करते। नाटककार ने नाटक में खड़ी बोली मिश्रित पंजाबी भाषा का प्रयोग किया है। यह भाषा आम बोलचाल की भाषा है। इस कारण उनकी भाषा में उर्दू, फारसी, अरबी, अंग्रजी शब्दों का व्यावहारिक रूप दिखाई देता है। असगर वज़ाहत ने सम्पूर्ण शिद्दत के साथ इस नाट्य भाषा का परिष्कार किया है। विभिन्न प्रकार के पात्रों की सूक्ष्म मनोदशाओं को मूर्त करने में यह भाषा पूर्णतःसफल रही है, इस कारण नाटक की भाषा समर्थ भाषा है।

ukV; 'kSyh

प्रस्तुत नाटक में विभिन्न नाट्य शैलियों का प्रयोग नाटककार ने किया है। इस कारण यह नाटक सार्थक तथा प्रभावी सिद्ध हुआ है। नाटक में विभाजन की घटना को कथ्य बनाकर विभाजन की समस्याओं को चित्रित किया है। उनका यह नाटक वातावरण प्रधान हैं। उन्होंने अपने नाटक में छोटी छोटी घटनाओं को चित्रित किया है जो दर्शकों पर या पाठकों पर एक अलग प्रभाव डालता है। नाटक में समयानुरूप गीतों का भी प्रयोग किया गया हैं। लेकिन ये गीत नाटक की परिणाम कारकता तथा उत्कटता बढ़ाने के लिए प्रयुक्त किए गये हैं। नाटक के हर एक दृश्य के बाद गीत का प्रयोग किया गया हैं। यह गीत हमें उस दृश्य पर विचार करने पर मजबूर कर देते हैं।

vfHku; rk

यह नाटक अभिनय में सहज तथा प्रभाव में व्यापक है। उनके नाटक खुले मंच पर भी सफलतापूर्वक मंचित किए गये हैं। नाटक की भाषा व्यावहारिक तथा संवाद छोटे हैं। आकार की दृष्टि से भी नाटक बड़ा नहीं है। प्रस्तुत नाटक में संवाद, भाषा, ग़ज़ल, अभिनेयता, वेशभुषा आदि नाटक को मंचित दृष्टि से सफ़ल बनाते हैं।, जिस लाहौर नइ देख्या ओ जम्याइ नइ' यह नाटक पूर्णतः अभिनेय है। इसका पहला सफ़ल मंचन 22 सितम्बर 1990 को प्रख्याम रंगकर्मी हबीब तनवीर के निर्देशन में श्रीराम सेंटर फॉर परफार्मिंग आर्ट्स में हुआ था। इसके बाद कई जगहों पर इसके सैकड़ों सफल मंचन हुए हैं और आज भी हो रहे हैं। यह नाटक सोलह दृश्यों में विभाजित है। प्रथम दृश्य में कुछ मुस्लिम लोग प्रर्दशनकारी पाकिस्तान की मांग को लेकर नारे लगाते हुए दिखाई देते हैं। दूसरे दृश्य में सिकंदर मिर्ज़ा और उनका परिवार कस्टोड़ियन द्वारा ऐलॉट हुई हवेली में आ जाते हैं। तीसरे दृश्य में कस्टोड़ियन ऑफिसर का कार्यालय है जिसमें दो–तीन कार्यालयी कर्मचारी बैठकर वार्तालाप करते दिखाई देते हैं। मिर्जा इन से बुढ़िया को हवेली से निकालने के लिए मदद मांगते है वह मिर्ज़ा को अपनी समस्या अपने आप ही सुलझाने को कहते है। चौथे दृश्य में मिर्जा अपनी पत्नी हमीदा बेगम से बुढ़िया को हवेली से कैसे निकाला जाए इसकी नीति बनाते दिखाई देते हैं। दृश्य पांच में अलीम की चाय की दुकान में पहलवान अपने मित्रों से बातचीत करता है, वहां नासिर साहब भी आते है और अपना परिचय देते है। दृश्य छह में हमीदा बेगम और माई की निकटता बढ़ती हैं। माई हमीदा बेगम को शहरे लाहौर की संस्कृति से परिचित कराती दिखाई देती हैं। इसी दृश्य में पहलवान को यह पता लगता है कि माई अभी जीवित हैं तो वह अपने स्वार्थ के लिए उनकी हत्या करने की कल्पना करता है। दृश्य सात में पहलवान हवेली में सिकंदर मिर्जा से मिलने आता है। वह अपने किसी मित्र को हवेली पर कब्जा देने के लिए मिर्ज़ा साहब से कहता है। मिर्ज़ा के मना करने के बाद वह माई की हत्या करने की धमकी देता है। अतः मिर्ज़ा साहब और हमीदा बेगम माई की सुरक्षा करते हैं।

दृश्य आठ में अपने स्वार्थ को पूरा करने के लिए पहलवान धर्म का आधार लेना चाहता हैं। वह मस्ज़िद के मौलवी से माई के बारे में बताता है। लेकिन मौलवी पहलवान को कुरान और हदीस के माध्यम से समझाने का प्रयास करते हैं, बुढ़िया पर अत्याचार मत करो। दृश्य नौ में नासिर काज़मी अपनी ग़ज़लों के माध्यम से अलीम और हमीद भाई को जड़ से काटे जाने का दर्द अभिव्यक्त करते दिखाई देते हैं। दृश्य दस में हवेली में आए पड़ोसियों से हमीदा बेगम बातचीत करती है। माई न स्त्रियों को लाहौर शहर के संबंध में बातें करती हैं और न वहां की संस्कृति के बारे में बताने का प्रयास करती हैं। इसी दृश्य में हमीदा बेगम मिर्ज़ा साहब से माई के चरित्र का गुण–गान करते दिखाई देती है। दृश्य ग्यारह में माई दिवाली का त्याहौर मनाती है। मिर्ज़ा को धमकियां भी देता है। दृश्य बारह में पहलवान मौलवी के बताने का प्रयास करता है, कि लाहौर में कुछ हो रहा है। वह माई के धर्म को बुरा कहता है, लेकिन मौलवी ऐसा करने के लिए मना कर देता है। दृश्य तेरह में नासिर साहब माई को रास्ते में रोक कर हवेली वापस ले जाते हैं। दृश्य चौदह मिर्ज़ा परिवार माई से अपनी नाराजगी व्यक्त करता है और एक वचन लेता है माई से की वह उन्हें छोड़कर अब कभी कहीं नहीं जाएगी। माई इस कवच को स्वीकार कर लेती हैं। दृश्य पंद्रह में माई की मृत्यु हो जाती हैं। पहलवान के विरोध करने के बाद भी मौलवी माई का क्रिया–कर्म हिन्दू धर्म के अनुसार करने का निर्णय देते हैं। माई का क्रिया–कर्म उनके धर्म के रीति रिवाज के साथ होता हैं। दृश्य सोलह में पहलवान अपने स्वार्थ में असफल होने की सबसे बड़ी बाधा मौलवी को समझता हैं। अतः वह अपने मित्रों के साथ मिलकर

मस्जिद में मौलवी की हत्या कर देता हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण नाटक का अभिनय एक ही दृश्यबन्ध पर हो सकता हैं। इसी कारण 'जिस लाहौर नइ देख्या ओ जम्याइ नइ' यह नाटक मंचीयता की दृष्टि से सफल माना जा सकता हैं।

xhr i;kx

आधुनिक हिन्दी नाटक साहित्य में गीतों का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में हुआ है। ये गीत नाट्य वस्तु में इस तरह से घुलमिल जाते हैं कि हम उन्हें अलग कर के देख ही नहीं सकते। इसी बारे में प्रताप सहगल जी कहते हैं कि नाटक का गीत नाटक की वस्तु में इतना घुलमिल जाता है कि उसे नाटक से अलग करके देखा ही नहीं जा सकता। प्रताप सहगल जी के शब्दों में–"गीत जब नाटक में आता है वह नाटक की संरचना का ही एक हिस्सा हो जाता है। अगर नहीं हो पाता तो वह गीत भले ही हो, नाटक का गीत नहीं होता।" गीत नाटक की कथा के संवाहक होते हैं। इस नाटक में गीतों का प्रयोग किया गया है, लेकिन कम मात्रा में। ये गीत अत्यंत ही सार्थक प्रतीत होते हैं– "और नतीजे में हिन्दोस्तॉ बँट गया–

"ये जमीं बँट गई आसमा, बँट गया
हमने देखा था जो ख़्वाब ही और था
अब जो देखा तो पंजाब ही और था।"

प्रस्तुत नाटक में भी गीतों का प्रयोग तो किया ही हैं लेकिन इसके साथ ही नासिर काज़मी साहब की गज़लों का भी प्रयोग में लाया है। असगर वज़ाहत ने नाटक की कथा वस्तु के अनुरूप ही दृश्य का विभाजन किया हैं। हर एक दृश्य के अंत में नासिर काज़मी की उन ग़ज़लों का प्रयोग किया है जो नाटक के दृश्य को समझने की नई दृष्टि देते हैं।

o'kHkw"kk

इस नाटक में असगर वज़ाहत ने वेशभूषा के बारे में कोई निर्देश नहीं दिया हैं। फिर भी नाटक के प्रमुख तथा केन्द्रीय पात्रों में सिकंदर मिर्ज़ा, पहलवान, मौलवी आदि इस्लाम धर्म के अनुरूप ही उनकी वेशभूषा है। स्त्री पात्रों में हमीदा बेगम, तनवीर बेगम और माई को भी उनके व्यक्तिनुरूप ही उनकी वेशभूषा है। नाटक के अन्य पात्र अलीम, नसिर साहब, हमीद भाई, सिराज, अनवर आदि पात्रों के वेश उनके व्यक्तित्वानुरूप हैं। असगर वज़ाहत ने पात्रों की वेशभूषा का संयोजन निर्देशक पर छोड़ दिया है।

idk'k ;kstuk

अंग्रेजी भाषा का 'लाइट ईफेक्ट' हिन्दी में प्रकाश–प्रभाव के नाम से जाना जाता है। इसे ही प्रकाश योजना कहा जाता है। प्रकाश योजना यह मंच संबंधी शिल्प है। एक समय था जब मंच पर मशालों और मोमबत्तियों के सहारे काम चलाया जाता था। बिजली के अविष्कार से प्रकाश कणों को निश्चित स्थान पर प्रयोग में लाने से नाट्यानुभूति को और सघन करने में मदद मिली है। पर्दा गिरनेवाली स्थिति मंदको द्वारा उत्पन्न की जाती हैं। प्रकाश को मंद किया जाता हैं। डॉ. जयदेव तनेजा प्रकाश उपकरणों के माध्यम से नाटक प्रयोगों के नये आयामों का उल्लेख हुए लिखते हैं कि, "विकसित प्रकाश यंत्रो तथा मन्दको (डिमस) एवं नयी अभिनय तकनिकों की सहायता से रंगमंच पर अब दृश्यों का फिल्मों की तरह विलोपन और 'प्रकटन (फेडआउट एवं फेड इन) पूर्व स्मृति (फैलेश बैक), कल्पना (फैलेश फारवर्ड), स्थितिकरण (फिजिंग), विलम्बित गति द्रुत गति एवं समानान्तर प्रसंगो के नाटकीय प्रस्तुतीकरण तो अब आये दिन की बात हो गई हैं।" नाटककार असग़र वज़ाहतने 'जिस लाहौर नइ देख्या ओ जम्याइ नइ' इस नाटक में सोच विचार कर नाटक के महत्वपूर्ण साधन के रूप में प्रकाश का उपयोग किया है, लेकिन बहुत ही कम मात्रा में। नाटककार ने नाटक के आरम्भ से ही प्रकाश योजना पर ध्यान दिया है। नाटक के प्रथम दृश्य में निर्देशन दिये हैं कि, "पूरा जुलूस" "खिंजिर पुत्तर कुत्ती दा" पर नाचने लगता है। यह कुछ क्षण जारी रहता हैं। फिर प्रकाश और आवाजें धीरे–धीरे कम होती हैं। मंच पर अंधेरे में कुछ क्षण के बाद हलका प्रकाश आता हैं और लूटे–पिटे शरणार्थियों का काफ़िला दिखाई पड़ता है। वे धीरे–धीरे मंच पर आगे बढ़ रहे हैं। पृष्ठभूमि से गायन की आवाज आती है।"

ग़ज़लें

गोविंद सेन
मनावर, जिला–धार, मध्य प्रदेश
मो0–9893010439

नींद रातों में आती नहीं
जिंदगी मुस्कुराती नहीं

छा गए मेघ चारों तरफ
तीरगी अब तो जाती नहीं

रूठ कर जा रहीं बदलियाँ
गीत रिमझिम के गाती नहीं

नुक़्स मेरे निकाले हैं वो
ऐब अपनी बताती नहीं

शर्म वो बेचकर खा गया
शर्म उसको तो आती नहीं

मन के आकाश पर मेघ है
चांदनी जगमगाती नहीं

2

झूठों का सरदार दिखाई देता है
परदे पर हर बार दिखाई देता है

चेहरे पर जिसके मायूसी छायी है
सच का पैरोकार दिखाई देता है

खेती–बाड़ी, प्लाट कई हैं मौके के
दौलत का विस्तार दिखाई देता है

चिकनी चुपड़ी बातें करता रहता है
सूरत से मक्कार दिखाई देता है

बादल है या घोड़ा है या है हाथी
धुँधला हर आकार दिखाई देता है।

आलेख

मुक्तछंद के प्रवर्तक
महाकवि निराला

डॉ0 नलिनी श्रीवास्तव
'शिवायन'
3बी/22/1, भिलाई, छत्तीसगढ़

बसंत ऋतु निराला का विशेष प्रिय ऋतु है, क्योंकि वसंत पंचमी निराला का जन्म दिवस भी है।

"सखी बसंत आया,
भरा हर्ष वन के मन
नव उत्कर्ष छाया"

निराला की सृजनधर्मिता आज भी प्रासंगिक है; क्योंकि उसमें जीवन के यथार्थ अनुभूतियों का सजीव चित्रांकन हमें दिखाई देता है। निराला ने साहित्य के सभी विधाओं पर अपनी लेखनी चलाई है। मुक्तछन्द के निराला जी हिन्दी साहित्य जगत के प्रवर्तक माने जाते हैं। पत्रकारिता के क्षेत्र में निराला की लेखनी बेबाक होकर अपनी विचारधारा को प्रस्तुत करने में कहीं पर भी विचलित नहीं हुए हैं। कथा–साहित्य में अपकी लेखनी 'चतुरी चमार', 'बिल्ले सुर बकरिहा' 'कुल्ली भाट', 'देवी', 'कला की रूपरेखा' में कहानी के सभी तत्वों का समावेश दिखाई देता है। आपकी कहानियाँ हिन्दी साहित्य में कथा–संसार का प्रतिनिधित्व करती हैं।

'राम की शक्ति पूजा' पंडित सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला की एक अनुपम कृति है। छायावाद के चार सशक्त स्तम्भ हैं – प्रसाद, पंत, महादेवी और निराला। निराला जी छायावादी कवि हैं; परन्तु आपकी परिकल्पना ने भोगा हुआ यथार्थ का एक पल के लिए भी विस्मृत नहीं किया है। यही कारण है कि आज आप 'महाप्राण' निराला कहलाते हैं।

श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी को 'बनाने का श्रेय उनकी पत्नी मनोहरा देवी को है। जिस प्रकार कालिदास को विद्योत्तमा ने बनाया और तुलसीदास को रत्नावली ने। निराला जी का कथानक भी उन्हीं के समान बहुत कुछ मिलता जुलता है। 'कुल्ली भाट' में इन्होंने स्वयं लिखा है–एक रात इन्होंने श्रीमती जी से पूछा– तुम हिन्दी–हिन्दी कहती हो, हिन्दी में क्या है?पत्नी के कहा 'जब तुम्हें आती ही नहीं, तब कुछ नहीं है'। तब निराला को अपनी हार इन शब्दों में स्वीकार करनी पड़ी कि हिन्दी हमें नहीं आती।

श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' जी का खड़ी बोली से परिचय ही नहीं था। निराला जी की धर्मपत्नी ने महावीर प्रसाद द्विवेदी, अयोध्या सिंह उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त आदि बीसियों कवियों के नाम गिना दिये, निराला जी अपनी पत्नी के ज्ञान पर स्तब्ध रह गये और मन ही मन प्रतिज्ञा की कि मैं भी हिन्दी पढ़ूँगा।

निराला जी महिषादल के जिस क्षेत्र में रहते थे उसमें कोई हिन्दी जानने वाला नहीं था। उस समय हिन्दी में दो विशिष्ट पत्रिकाएँ थी–एक 'सरस्वती' ओर दूसरी 'मर्यादा'। दोनों पत्रिकाओं को मंगाकर निराला जी स्वाध्याय करने लगे। रात के दो तीन बजे तक सरस्वती का एक–एक वाक्य संस्कृत, बंगला और अंग्रेजी व्याकरण के सहारे समझने का प्रयत्न करने लगे। अनवरत साधना, एकांत निष्ठा, लगन और परिश्रम तथा उत्साह के बल पर इन्होंने हिन्दी का ज्ञान प्राप्त किया। निराला का दृढ़संकल्प ही आज उन्हें हिन्दी साहित्य का चमकता हुआ सितारा बना दिया।

डॉ0 रामविलास शर्मा ने 'रागविराग' की भूमिका में निराला की काव्य साधना को तीन चरणों में उल्लेख किया है। राम की शक्ति पूजा से 1936 में इस काव्य साधना का पहला चरण समाप्त होता है। नए पत्ते में संगृहीत कविताएँ सन् 1946 में दूसरा चरण और उसके बाद 1961 तक लिखी गई कविताएँ तीसरे चरण की हैं। इन तीनों चरणों में निराला की विचारधारा का भावबोध में कोई भौतिक अन्तर नहीं हुआ है। निराला जी अपनी स्वाभाविक सृजनात्मक गति के साथ किसी नए अविष्कार का दावा कहीं नहीं करते हैं। लिखने वालों के लिए भाषा और भावों के संस्कार से उन्होंने यह सुविधा कर दी है कि कविता के एक आधुनिक अंग की भाषा की लीक पकड़ सकेंगे। कविता पढ़कर ज्ञान प्राप्त करना विज्ञप्ति पढ़ने से अच्छा है। यहीं पर निराला जी ने सबसे अलग कविता के क्षेत्र में मुक्त छंद की नींव डाली।

यह हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि अज्ञेय, शमशेर, मुक्तिबोध एक दूसरे से अलग अलग विचारधारा के रहते हुए भी निराला के कविकर्म से प्रेरणा ग्रहण की है। यह निराला के पूर्ण समर्पित कवि जीवन की साधना का प्रतिफल है।

आदिकवि महर्षि बाल्मीकि द्वारा लिखित रामायण में राजा राम के क्षत्रिय धर्म और औदात्यपूर्ण संस्कृति का चित्रण है। तुलसीदासकृत रामचरित मानस में मर्यादा पुरूषोत्तम राम भारतीय इतिहास की सर्वाधिक चर्चित कथा है। इसी परम्परा में निराला द्वारा प्रणीत राम की शक्ति पूजा आधुनिकता के परिपेक्ष्य में, जीवन संघर्ष के उतार चढ़ाव, आशा निराशा के पल प्रतिपल मन की संवेदनाओं का सुन्दर सजीव रूप का चित्रण किया गया है। भाषा विषय के अनुकूल होकर तथा संस्कृत निष्ठ होकर भी अर्थ को समागम करने में कहीं पर भी दुरूहता नज़र नहीं आती है। एक आलोचक ने राम की शक्ति पूजा के संबंध में यहाँ तक कह दिया है कि इस काव्य के नायक राम के चरित्रांकन में कवि ने उपचेतना में ही अपने व्यक्तित्व को संगृहीत कर दिया है। जैसी वीरता, उदारता तथा करुणा का भाव निराला के व्यक्तित्व में रही है, वैसे ही उन्होंने राम के व्यक्तित्व में अंकित कर दी है और तदानुसार ही कविता में रस–व्यंजना भी परिलक्षित होती है।

"रवि हुआ अस्त
ज्योति के पत्र पर लिखा
अमर रह गया राम रावण का अपराजेय समर।"

राम की शक्ति पूजा में राम–रावण युद्ध का सजीव एवं भव्य वर्णन किया गया है। यह वर्णन हिन्दी साहित्य के वीर–गाथा काव्य के वीर रसात्मक वर्णनों का सहज ही याद दिला देता है। युद्ध–स्थल को सजीव बनाने में निराला का प्रयास स्पृहणीय है। काव्य में जिस नाद व्यंजना की आवश्यकता होती है उसे संयुक्ताक्षरों 'ट वर्ग' के अक्षरों, महाप्राण ध्वनियों, श्रुत्यनुप्रासों द्वारा सुन्दर ढंग से प्रतिबिम्बित करने का प्रयास किया गया है। यही कारण है कि भाषा में ओज गुण की दीप्ति सहज ही दर्शनीय है।

"है अमानिशा, उगलता गगन घन अंधकार
खो रहा दिशा का ज्ञान, स्तब्ध है पवन–चार
अप्रतिहत गरज रहा पीछे अम्बुधि विशाल
भूधर ज्यों ध्यानमग्न केवल जलती मशाल।"

लंकेश रावण को महाशक्ति का वरदान है यही कारण है कि राम के

समस्त शस्त्र विफल हुए जा रहे हैं। यह दृश्य राम को निराशा के भँवर में डूबने उतरने जैसी हालत हो गई है। जामवन्त का सलाह कि तपस्या में अद्‌भुत शक्ति है। आप प्रयास करें कि महाशक्ति आपके वश में हों। इस मंत्रणा के अवसर पर निराला का भाव अत्यधिक सजीव है। राम तप सिद्धि के अन्तिम कगार पर पहुँच कर भी किं कर्तव्य विमूढ़ हो रहे हैं। आसन पूजा के क्षण में छोड़ते नहीं बन रहा है। अंतिम कमल के फूल का न मिलना राम को व्यथित किये जा रहा है। रावण आदि शक्ति देवी के वरदान से गर्वोन्मत हो रहा है। इधर राम निराशा और अवसाद में घिरे मानस पटल में बार–बार सीता की छवि दिखाई दे रही है। राजा जनक का उपवन सीता की प्रथम दृष्टि की झलक की यादें मन को उत्साहित करने के सुन्दर सफल भाव संयोजन निराला की लेखनी से मुखरित हुई है। सीता की यादें राम को रोमांचित कर जाती है। दुबारा शिव धनुष तोड़ने की शक्ति की यादों से प्रफुल्लित तन मन पुलकित हो जाता है। सीता की यादें राम की आशा विश्वास रूपी मुस्कान में परिवर्तित होने लगती है। हृदय में उठती उमंगे विश्व विजय की भावना से आप्लावित होने लगी। मन की संवेदनाएँ भाव अतिरेक के कारण राम के नेत्रों से मोती जैसे आँसू टपक पड़ते हैं। तभी माता कौशल्या की यादें सजीव हो उठती हैं कि माता जी उन्हें कमल लोचन कहा करती थी तो क्यों न कमल के स्थान एक लोचन ही समर्पित कर तप को पूर्ण कर लूं।

इस बीच राम की उदासी व निराशा को देख विभीषण का मन आतंकित हो जाता है। क्या करें, अब तो रावण को सहायता करने स्वयं महाशक्ति अवतरित हो गई है। जिधर अन्याय करें, अब तो रावण को सहायता करने स्वयं महाशक्ति अवतरित हो गई है। जिधर अन्याय उधर शक्ति है। निराला का भाव तात्कालिक परिवेश का जीवंत वर्णन करने में सफल है।

जामवन्त की विश्वास भरी वाणी राम को शक्ति की याद दिला कर यह कहलाना कवि की बुद्धि चातुर्य का सुन्दर रूप है। हे रघुनन्दन जब तक आप महाशक्ति को सिद्ध न कर लें तब तक युद्ध से विरत हो जाइए। जामवन्त को यह कहना कि तामसी शक्ति की अपेक्षा सात्विकी शक्ति कहीं अधिक प्रभावशाली होती है। जामवन्त की सलाह राम तुरन्त आदिशक्ति दुर्गा पर अपना कमल नयन चढ़ाने को तैयार होते हैं। कवि निराला का यह भाव दृश्य अत्यन्त मार्मिक व हृदयस्पर्शी है।

"कह कर देखा तूणीर ब्रह्मास्त्र रहा झलक
ले लिया हस्त लक लक करता वह महा फलक
ले अस्त्र वाम, दक्षिण कर दक्षिण लोचन
ले अर्पित करने को उद्दत हो गये सुमन"

गोस्वामी तुलसीदास हृदय रूपी सिन्धु में उत्पन्न होने वाली मुक्ति रूपी मुक्ता प्रदान करने वाली सीप कहा है।

"हृदय सिंधु मति सीप समाना
स्वाति शारदा कहहिं सुजाना
यह स्वाति ही यहाँ निराला की स्मृति है

प्रसाद के 'आँसू' काव्य में प्रयुक्त आँसू छंद की भांति राम की शक्ति पूजा को शक्ति पूजा छंद कह सकते हैं। महाशक्ति के मातृपक्ष का अतीव सुन्दर वर्णन करने में निराला की कीर्ति अक्षय है।

"होगी जय होगी जय हे पुरूषोत्तम नवीन
कह महाशक्ति राम की बदन में हुई लीन"

साहित्य निराला के रोम रोम में रचा बसा है। साहित्य की साधना निराला के लिए एक अनुष्ठान था, एक पूजा थी। सर्वस्व समर्पण की भावना निराला की रग रग में समाहित थी। निराला जी की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि जीवन के सभी रंगों की प्रतिक्रिया पर उनकी लेखनी उन्मुक्त होकर प्रवाहित हुई है। कटु जीवन संघर्ष के अनुभवों से लेकर सुख के पलों को सहेजती हुई प्रकृति के अनुपम सौंदर्य प्रवाह कठोर पर्वत को काटती निर्झरणी की तरह बहती चली है। निराला जी के दुःख क्लेश के लिए जहाँ यह परिवेश उत्तरदायी है वहाँ कोई अदृश्य नियति भी मानों उनकी विजय को पराजय में बदल देती है। निराला के ऊपर वैज्ञानिक युग का पूरा पूरा प्रभाव परिलक्षित हैं। उन्हें रूढ़िवादिता में बिल्कुल विश्वास नहीं था। इसीलिए निराला एक क्रांतिकारी कवि भी हैं।

रामविलास शर्मा जी लिखते हैं निराला के तराशे हुए विवेक को साधकर रचे हुए गीत है; ये भावोद्‌गार मात्र नहीं है उनमें जल की तरलता नहीं, हीरे की सी कठोरता और भीतरी दमक है।

'सरोज स्मृति' पुत्री के निधन का प्रसंग लेकर कथानक का सृजन किया गया है। सरोज निराला की एकमात्र कन्या थी। सवा अठारह वर्ष की उम्र में एक करुण परिस्थिति में उसका अवसान हुआ। सरोज का शिशुसंसार में आए कुल सवा वर्ष ही हुए थे कि स्नेहमयी जननी का स्नेह संरक्षण से विलग हो गयी। सरोज नानी की गोद में ही पली।

निराला ने सरोज और उसके भाई के मारपीट का चुभता हुआ दृश्य कितना सजीव ढंग से रेखांकित किया है –

"खाई भाई की मार विकल
रोई उत्पल दल दृग छल–छल
चुमकारा फिर उसने विहार
करने को लेकर साथ चला
तु गहकर पली हाथ चपला।"

प्रारम्भ में निराला जी मुक्त छंद की रचना करते रहे और सम्पादकगण उन्हें वापस कर देते थे। निराला जी तत्कालीन सम्पादकों पर व्यंग्य करते हुए लिखते हैं –

"बैठा प्रांतर में दीर्घ प्रहर,
अतीत करना था गुण–गुण कर
सम्पादक के गुण–यथाभ्यास
पास की नोंचना घास।"

निराला जी के दुख क्लेश के लिए जहाँ यह परिवेश उत्तरदायी है। वहाँ कोई अदृश्य नियति भी मानों उनकी विजय को पराजय में बदल देती है। निराला के ऊपर वैज्ञानिक युग का पूरा पूरा प्रभाव पड़ा है। उन्हें रूढ़िवादिता में बिल्कुल विश्वास नहीं था। ज्योतिश विद्या से निर्मित निराला की कुंडली में लिखा गया था कि उनका दो विवाह होगा। परन्तु निराला जी ने अपनी कुंडली अबोध लड़की सरोज को दे दी। वह खेल खेल में कुंडली के टुकडे टुकडे कर डालती है।

अपनी कन्या सरोज के तारुण्य का वर्णन कर निराला जी ने यह सिद्ध कर दिया कि लोक भूमि से कितने ऊँचे उठे हुई हैं–

"जाना बस पिक बालिका प्रथम
पल अन्य नीड़ में जब आश्रय
होती उड़ने को अपना स्वर
भंग करती ध्वनित मौन संसार।"

कोयल पहले दूसरे के नीड़ में पलती है और उड़ने में समर्थ होती है तब अपने स्वर से सूने प्रदेश को ध्वनिपूर्ण करती हुई उड़ जाती है।
निराला जी पूर्वजों की बनायी परम्परा का ही अनुसरण क्यों करें, इसी मनःस्थिति से एक साहित्यिक नवयुवक विद्वान के साथ सीधे सादे ढ़ंग से सरोज का विवाह कर देते हैं।
उसमें पुरोहित जी का काम भी स्वयं ही कर देते हैं।
निराला जी ने कहा – दहेज देकर मूर्ख बनने की अभिलाषा मुझमें नहीं है, न ही बारात बुलाकर मिथ्या प्रदर्शन करना चाहता हूँ। अपने कुछ साहित्यिक मित्र वर्ग को ही, उन्होंने निमंत्रित किया। लेकिन दो वर्ष बाद ही प्रसव पीड़ा से सरोज का स्वर्गवास हो गया। इससे निरला जी को गहरी ठेस लगी –

"दुःख ही जीवन की कथा रही
क्या कहुँ, आज जो नहीं कही।"

अपने दुःख के अनुभव पर वज्रपता की कामना करते हैं –

"हो इसी कर्म पर वज्रपात
यदि धर्म रहे नत सदा माथ
इस पथ पर मेरे कार्य सफल
हो भ्रष्ट शीत के से शतदल।"

निराला जी अपनी कन्या का तर्पण भी एक दार्शनिक विधान के अनुसार करते हैं –

"कन्ये! गत कर्मों का अर्पण
कर करता हूँ मैं तेरा तर्पण।"

यहाँ पर कवि ने कर्मशक्ति का त्याग और गीता के अनासक्त योग दोनों रूपों में करुणा की पृष्ठभूमि पर श्रृंगार, वात्सल्य और हास्य संवेदनाओं का सृजन किया है।
यूरोप के शोकगीतों में दुःख और क्षोभ की ऐसी विकट परिणति कहीं नहीं है। किन्तु शेक्सपियर के किंगलियर में हैं। मृत पुत्री कोर्डीलिया का शव लिए हुए देवता और मनुष्य दोनों को कोसने वाले किंगलियर और सरोज स्मृति में अपने गत कर्मों से कथा का तर्पण करने वाले इसी कर्म पर वज्रपात कहकर स्वयं को कोसने वाले निराला में अद्‌भुत साम्य है। निराला के क्रुद्ध–विक्षुब्ध स्वर लियर की करुण–व्याकुल पुकार से मिलता जुलता है। लियर और निराला में अन्तर है। लियर अपने क्षोभ में सारी मानवता को कोसता है। मानवीय गुणों में निराला की आस्था कभी खंडित नहीं हुई है।
अंग्रजी कवियों ने भी शोक गीत लिखे हैं लेकिन कवि पिता ने अपनी पुत्री के निधन पर लिखा हो, ऐसा कहीं नहीं लक्षित होता है।
मित्र या प्रियतमा पर लिखे शोकगीत तो हमें कई मिलते हैं। ग्रे का शोकगीत अंग्रेजी साहित्य की एक प्रसिद्ध रचना है। सरोज स्मृति का विषय भी ग्रे के विषय के समान करुण है। इसमें अनुभूतियों की गहराई विशेष रूप से दृष्टव्य है।
निराला के मन का द्वंद्व, श्रृंगार और वैराग्य को लेकर नहीं, जीवन संघर्ष की सफलता और असफलता को लेकर है।
जीवन के अंतिम दशक में निराला के मन में उल्लास का स्रोत सूखा न था। सूखना तो दूर लगता है, जल और भी निर्मल होता गया। प्रवाह अधिक संयत, फिर भी वेग पूर्ण है। निराला अपने विवेक–युक्त मन का पूर्ण परिचय देते हुए इस संसार से बिदा हुए।
कविता के भीतर भी जैसा आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी जी ने हिन्दी साहित्य की बीसवीं शताब्दी में लिखा है – 'जितना प्रसन्न तथा अस्खलित व्यक्तित्व निराला जी का है उतना न प्रसाद जी का है न पंत जी का है।' यह निराला जी की समुन्नत काव्य साधना का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

कविताएं

डॉ0 रानी श्रीवास्तव
ईस्ट पटेल नगर, रोड नं0–3, पटना
मो0–9934836793

कतरा–कतरा ओस

हम नदियों की पूजा करते हैं
स्त्रियों की भी
किन्तु न नदियों को रखते हैं पवित्र
न जीने देते हैं स्त्रियों को
क्या होगा जब
सूख जाएँगी नदियाँ
नही रहेंगी स्त्रियाँ
इतिहास के पन्नों से निकलेंगी चेतावनियाँ
मगर हम
कुछ नर कर पाएँगे
आसमाँ से टपकेगा
कतरा–कतरा ओस
वहीं बुझाएँगे
वंशजों की प्यास।

शब्द

किसान के हाथ में
खुरपी और कुदाल के साथ
होते अगर कुछ शब्द
रोप देता उन्हें
बंजर पड़ी जमीन पर
किसान तोड़ सकते हैं
अपने उगाए शब्द को
लड़ सकते हैं
हकमारी की लड़ाई
वे खुरदुरे हाथों से
ठोक सकते हैं कील
मुनाफाखोरों की छाती में।

ताप

झट से जलना
चटपट बुझ जाना
कुछ खास नहीं
मन के अंदर दबी
छोटी–सी चिंगारी
देहरी पर जलता
इंतजार का दीया
ताप देता
जीवन भर का
यह जलन सब पर भारी।

आलेख

आज की कविता और नारीवाद

डॉ0 पंकज साहा
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
हिन्दी–विभाग, खड़गपुर कॉलेज
खड़गपुर (पंश्चिम बंगाल) मो0–8918818513

आदिकाल से हमारे देश में नारी को अत्यधिक सम्मान दिया गया है। उसे आदिशक्ति, सृष्टि का श्रृंगार, प्रकृति का उत्कृष्ट उपहार, करुणा की अवतार और नाना उपाधियों से विभूषित किया गया है। नारी के ऐसे ही उदात्त गुणों को लक्ष्य कर मनुस्मृतिकार ने कहा है–

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः। यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।"

अर्थात् नारी कुँवारेपन में पिता के संरक्षण में, विवाह होने पर पति के संरक्षण में और वृद्धावस्था में पुत्र के संरक्षण में रहती है अर्थात् नारी स्वतंत्र नहीं, सर्वत्र परतंत्र है।

आदिकाल से लेकर 20वीं शताब्दी के प्रथम दशक तक नारी के प्रति अधिकांश साहित्यकारों की दृष्टि इन्हीं दो धुरियों के इर्द–गिर्द घूमती रही हैं। 20वीं शताब्दी के दूसरे दशक से हिन्दी साहित्य में नारी के प्रति एक नवीन दृष्टि का उन्मेष होता है और तीसरे दशक में नारी केवल अबला न रहकर श्रद्धा में बदल जाती हैं। परंतु बाद के युग की नारी केवल श्रद्धा का चेहरा और भारतीय समाज और संस्कृति की रीढ़ बनकर रहने में, गीता पढ़ने, सीता बनने और भात पकाने में अपने जीवन की सार्थकता नहीं मानती है। वह अपनी मुक्ति हेतु छटपटाने लगती है।

मीरा की कविताओं में नारी मन की पीड़ा, असंतोष और विद्रोह का जो भाव मिलता है, वह आधुनिक मीरा मानी जाने वाली महादेवी की रचनाओं में एक नयी दृष्टि के साथ अत्यंत संतुलित रूप में प्रस्फुटित होता है। भारतीय नारियों की मूल समस्या के संदर्भ में 'श्रृंखला की कड़ियाँ' में वे कहती हैं..... "भारतीय नारी की मूल समस्या असंतुलन है। उसमें कहीं असाधारण दीनता है और कहीं असाधारण विद्रोह।"

महादेवी जहाँ नारी की चिरंतन पीड़ा में विश्व की शाश्वत पीड़ा का उद्घाटन करती हैं, वहीं नारी–मुक्ति की कथा औरों के लिए छोड़ती हुई कहती हैं.....

"और कहेंगे मुक्ति कहानी
मैंने धूलि भर व्यथा जानी।"

शायद उन्हें पता था कि आने वाले समय में नारीवादी लेखिकाएँ नारी–मुक्ति की बात करेंगी।

आज Neo feminism का दौर चल रहा है। इस दौर में स्त्री पुरुष पर अवलंबित नहीं रहना चाहती। वह स्वयं को दुर्बल नहीं मानती। वह पितृसत्ता का विरोध करती है। कवयित्री अनामिका कहती हैं–

"कृपा नहीं,
प्रेमा का प्रसाद भी नहीं लेंगी
भामती की बेटियाँ
ग्रंथ अपने स्वयं रचेंगी
लगातार
इसी तरह हर युग में.....।"

इसी विरोध को ममता कालिया जी कुछ तल्ख शब्दों में इस प्रकार व्यक्त करती हैं.....

"अब और नहीं सहेगी
खाँटी घरेलू औरत
पिछली पाँत में खड़ी नहीं रहेगी
जाएगी सिविल लाइंस कटवा देगी यह लंबी काली चोटी
देह के सारे अवांछित बाल साफ करवा लेगी
ले आएगी वह रैपिडैक्स इंग्लिश रीडर
नहीं पहनेगी अब वह
मोटी हैंडलूम साड़ियाँ।"

इन्हीं की तरह कुछ संवेदनशील कवयित्रियों को अपवाद स्वरूप छोड़ दिया जाय, तो सच्चाई यह है कि आज की अधिकांश स्त्रीवादी कविता अपनी अस्मिता और मुक्ति के लिए जिस पथ पर चल पड़ी है, उनमें भटकाव अधिक है, जुड़ाव कम है। जबकि मुक्तिबोध ने कहा था–

"कभी अकेले में मुक्ति नहीं मिलती
यदि वह है तो सबके साथ है।"

परंतु आज की अधिकांश कवयित्रियों की मुक्ति का रास्ता न तो परिवार–मुक्ति की ओर जाता है, न समाज–मुक्ति और न मानव–मुक्ति की ओर, बल्कि इनकी मुक्ति–चेष्टा देह–मुक्ति और पितृसत्ता से मुक्ति के इर्द–गिर्द अत्यंत जोश के साथ घूमती रहती है। वे कभी नारी द्वारा नारी के शोषण, नारी द्वारा नारी पर हो रहे अत्याचार पर आवाज नहीं उठातीं। राजेन्द्र यादव के 'सारा आकाश' उपन्यास का मूल कथ्य ही है कि "नारी ही नारी के कष्टों का कारण बनती है।"

काश्मीरी कवयित्री हब्बा खातून ने ससुराल में सास द्वारा प्रताड़ित किये जाने पर अत्यंत मार्मिक शब्दों में अपनी पीड़ा व्यक्त की है–

"ससुराल में सुखी नहीं, मुझे उबारों
मायके वालो, मेरा कष्ट निवारो।
चर्खा कातते आँख जो लगी मेरी
माल टूट गयी चर्खे की
सास ने तब बाल मेरे खींचे
मौत–सी पीड़ा हुई मुझे बचा लो
मायके वालों, मेरा कष्ट निवारो।"

हिन्दी की आज की कवयित्रियाँ न तो धर्म के आश्रय में हैं न राज्य के आश्रय में। फिर भी, वे न तो अफगानिस्तान में हुए या हो रहे नारी–अत्याचारों, नारी–शोषणों का विरोध कर रही हैं और न ही अपने देश में कुछ नारियों द्वारा किये जा रहे भ्रष्ट आचरण, ड्रग–सेवन आदि पर कुछ कह रही हैं। यहाँ यह तर्क दिया जा सकता है कि जब पुरूष ऐसा काम कर सकते हैं, तो नारी क्यों नहीं?इसे समान–अधिकार, समान–आचरण का मामला मानकर चेप्टर क्लोज किया जा सकता है। लेकिन कुछ वर्ष पूर्व हमारे देश में जब 'मी टू' की लहर चली थी, तब क्या हुआ था?कुछ महिलाओं ने कुछ पुरूषों पर 'मी टू' के आरोप लगाये और इसे लेकर काफी बवाल भी मचा। जिन महिलाओं ने 'मी टू' के आरोप लगाए थे, उनमें से कुछ महिलाओं के पिता, पुत्र, भाई पर भी कुछ महिलाओं ने 'मी टू' के आरोप लगाए। तब वे या तो चुप रहीं या

अपने पिता, पुत्र या भाई पर भी कुछ महिलाओं ने 'मी टू' मुद्रा में आ गयीं।

अक्सर यह देखा गया है कि तथाकथित नारीवादी कवयित्रियाँ पितृसत्ता का विरोध फैशन के तौर पर करती हैं न कि मिशन के तौर पर। अधिकांश नारीवादी कवयित्रियों को शायद पता ही नहीं है कि उनका वास्तविक लक्ष्य क्या है। पितृसत्ता विरोधी कविताएँ लिखकर पत्रिकाओं में छपना, वाह–वाही पाना, पुरस्कार/सम्मान पाना या 'जाग तुझको दूर जाना'।

वर्तमान समय में नारी–चेतना अत्यंत सशक्त रूप में उभरी है, परंतु यह काबिले गौर है कि यह चेतना किन नारियों की किन नारियों के प्रति है?स्वामी विवेकानंद ने कहा था, "सर्वप्रथम स्त्री जाति को सुशिक्षित बनाओ, फिर वे स्वयं कहेंगी कि उन्हें किन सुधारों की आवश्यकता है। तुम्हें उनके प्रत्येक कार्य में हस्तक्षेप करने का क्या अधिकार है?शिक्षित हो जाने पर वे स्वयं अपने हानि–लाभ का विचार कर इस प्रकार की कुरीतियों को निकाल बाहर करेंगी।" (विवेकानंद साहित्य, खंड–6, प्रथम संस्करण, पृ. 181)

लेकिन क्या वास्तव में आज की शिक्षित नारियाँ पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक कुरीतियों से उस प्रकार लड़ रही हैं या वैसा कुछ कर रही हैं जैसा ज्योतिबा फुले, उनकी पत्नी सावित्रीबाई फुले, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, राजा राममोहन राय या अन्य समाज सुधारकों ने किया था?माना जमीनी लड़ाई लड़ना सबके लिए संभव नहीं है, लेकिन जो नारीवादी कवयित्रियाँ कविता के माध्यम से अपने हक के लिए लड़ाई लड़ रही हैं, उनकी अभिव्यक्ति में न तो हब्बा खातून की तरह मार्मिक गुहार है न मीरा की तरह राजसत्ता एवं पितृसत्ता के प्रति प्रकट विद्रोह। द्विवेदी युगीन राष्ट्रप्रेमी कवयित्री राजरानी देवी एवं सुप्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी एंव महान कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान ने नारी दुर्दशा को देश की दुर्दशा से जोड़कर देखा था। हमारा देश अंग्रजों की दासता से भले मुक्त हो गया हो, सामाजिक दुर्दशाओं, आर्थिक विषमताओं, धार्मिक विडंबनाओं से अभी तक मुक्त नहीं हो सका है। तथाकथित नारीवादी कवयित्री में इनसे लड़ने की उनकी तरह न तो प्रकट चेष्टा है और न महादेवी जैसा सूक्ष्म विद्रोह। कुछ अपवादों को छोड़कर इनकी कविताओं में पश्चिम से आयातित नारी–चेतना ही जोशीले अंदाज में दिखलाई पड़ती है।

शुक्र है नारियों के गद्य–लेखन में पश्चिमी जोश की मात्रा कम है और लेखिकाओं ने अत्यंत समझदारी के साथ पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में नारी की व्यथा एवं संघर्ष की कथा कही है। उषा प्रियंवदा, मन्नु भंडारी, ममता कालिया, कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग, चित्रा मुद्गल, सुधा, नासिरा शर्मा, अलका सरावगी जैसी लेखिकाओं के गद्य–लेखन में यह देखा जा सकता है।

गज़ले

सतीश कुमार
यशोदानगर, कानपुर (यू.पी.)
7793547629

अब मिटा दीजिए या बना दीजिए
प्यार का कुछ न कुछ तो सिला दीजिए

लग गयी कब कहाँ किसको किसकी नज़र
कुछ पता है अगर तो बता दीजिए

भूल हमसे हुई देखिये भूल से
भूल जो भी हुई है भुला दीजिये

रात रुकती नहीं दिन निकलता नहीं
ख़्वाब को नींद से अब जगा दीजिये

आ गया है तेरे सामने आईना
आईना आईने को दिखा दीजिये

आपसे अब मेरी इल्तिजा है यही
आशियाँ मेरे दिल का सजा दीजिये।

आदमी को बनाता रहा आदमी
आदमी को मिटाता रहा आदमी

पत्थरों के नगर में बड़े शौक़ से
पत्थरों को सजाता रहा आदमी

आग के मंच पर मोम की भूमिका
किस अदा से निभाता रहा आदमी

चाँदनी रात में कभी या कभी धूप में
ख़्वाब अपने सजाता रहा आदमी

प्यार की आग में कामना जब जली
खुद से नज़रें चुराता रहा आदमी

वेदना की अगन में सुलगता रहा
ग़म से रिश्ता निभाता रहा आदमी

क्या ख़बर क्या हुआ आखिरी वक्त में
लौ खुदा से लगाता रहा आदमी

जो कहा मैंने उसने सुना ही नहीं
और उसने कभी कुछ कहा ही नही

मेरे महबूब का भी अजब हाल है
मुझसे क्या चाहता है पता ही नहीं

लोग आते रहे लोग जाते रहे
दूसरा उसके जैसा मिला ही नहीं

इस तरह आ बसा दर्द दिल में मेरे
दर्द दिल से जुदा फिर हुआ ही नहीं

बस्तियाँ बस गयी हैं उजड़कर मगर
दिल हमारा उजड़कर बसा ही नही

ज़ख़्म इतने दिये ज़िन्दगी ने मुझे
कोई लम्हा खुशी का जिया ही नहीं

राम जाने ये किसकी नज़र लग गयी
इस बरस कोई मेला लगा ही नहीं।

२१ वीं सदी में सोशल मीडिया

दत्तात्रय आसाराम किटळे
शोध छात्र हिन्दी विभाग,
अम्बेडकर विश्वविद्यालय, औरंगाबाद, महाराष्ट्र
मो0–8830441512

आज 21 वीं सदी में हम इस सत्य को बिल्कुल भी नजरअंदाज नहीं कर सकते कि सोशल मीडिया हमारे जीवन में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभानेवाला माध्यम बन गया है इसके माध्यम से हम किसी भी प्रकार की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। इतना ही नहीं विश्व के किसी भी कोने में बसे अपने हितैशियों से बात कर सकते हैं। सोशल मीडिया मूल रूप से कंप्यूटर या किसी भी मानव–संचार या जानकारी के आदान–प्रदान करने से जुड़ा हुआ है, जो कंप्यूटर, टैबलेट या मोबाइल के माध्यम से प्राप्त की जाती है। ऐसी कई और वेबसाइट्स और ऐप्पस भी हैं जो इसे संभव बनाते हैं। सोशल मीडिया अब संचार का सबसे विशाल माध्यम बना है और उतनी ही तेजी से लोकप्रिय भी बनता जा रहा है। सोशल मीडिया आपके विचारों, सामग्री, सूचना और समाचार आदि को बहुत तेजी से एक–दूसरे से साझा करने मे सक्षम बनाता है। दिन–प्रतिदिन सोशल मीडिया के उपयोग में बहुत अधिक मात्रा में वृद्धि होती दिख रही है तथा इसने विश्व के लाखों उपयोगकर्ताओं को एक साथ जोड़ लिया है।

सोशल मीडिया आज दुनिया के कोने–कोने से लोगों को आपस में जोड़ने का महत्वपूर्ण साधन बन गया है। इसके अलावा सोशल मीडिया प्रमुख प्रभावशाली व्यक्तियों को अपना ब्रांड बढ़ाने में मदद करता है। साथ ही महत्वपूर्ण समाचार और घटनाओं को तेजी से सोशल मीडिया पर साझा कर रहा है। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह कि, "इंटरनेट के प्रयोग से निर्मित उन मंचों के समूह को सोशल मीडिया कहा जाता है जिसके जरिए आम आदमी अपने विचारों को समाज के सामने रख सकता है। इन मंचों का प्रयोग करनेवाला हर व्यक्ति वहां एक 'प्रोफाइल' के रूप में मौजूद रहता है। इन प्रोफाइलों के जरिए लोग अपनी बातों को लिखित सामग्री तस्वीरों, ऑडियों और वीडियों सामग्री के रूप में इन मंचों पर प्रस्तुत करते हैं।" इस तरह हम कह सकते है कि फेसबुक, ट्वीटर, इन्स्टाग्राम, वॉटस्अप, ब्लॉग, यु–टयूब, इ–मेल आदि तथा अन्य भी बहुत सारे समाज माध्यमों द्वारा आज का व्यक्ति एक–दूसरे से जुड़ गया है। नवीनतम जानकारी के अनुसार भारत में वॉटस्अप उपयोगकर्ताओं की संख्या 53 करोड़, फेसबुक पर 24 करोड़ से अधिक तथा इन्स्टाग्राम के उपयोगकर्ताओं की संख्या 21 करोड़ है।

सोशल मीडिया पारस्पारिक संबंध के लिए अंतर्जाल या अन्य माध्यमों द्वारा निर्मित आभासी समूहों को संदर्भित करता है। हम इसका उपयोग सामाजिक संबंध के अलावा सामग्री के संशोधन एवं नवनिर्माण के लिए भी कर सकते हैं। सोशल मीडिया के कई रूप है। जैसे–इंटरनेट, फोरम वेबलॉग, सामाजिक बलॉग, मायक्रोब्लॉगिंग आदि। सोशल मीडिया अन्य पारंपारिक तथा समाजिक तरीकों से एकदम अलग है।– "इंटरनेट प्रयोक्ता अन्य साइट्स की अपेक्षा सामाजिक मीडिया साइट्स पर ज्यादा समय व्यतीत करते हैं।" इस प्रकार हम देखते हैं कि वास्तव में हम आज आभासी माध्यमों द्वारा एक–दूसरे से अधिक मात्रा में जुड़ गये हैं। यह सोशल मीडिया पूर्णतः डिजिटल माध्यम है। यह एक तकनीकि आधारित साझेदारी है। बिना तकनिक और उपकरण के यहाँ संप्रेषण की कल्पना भी नहीं की जा सकती। इस कारण कहा जा सकता है कि सोशल मीडिया के लिए कंप्यूटर या मोबाइल अथवा उपकरण अनिवार्य है।

वर्तमान समय यह तकनीकी का समय है। इस समय में हर कोई एक–दूसरे से सोशल मीडिया द्वारा जुड़ना चाहता है। लोगों को जोड़ने का कार्य तीव्र गति से किसी ने किया तो वह 'फेसबुक' है। इस फेसबुक के माध्यम से लोग अपनी बात पूरी तरह से लोगों के साथ साझा कर सकते हैं। ललित कुमार के अनुसार–"भारत में जब फेसबुक का उदय हुआ तो इसकी चमक में अन्य सभी मीडिया माध्यम फिके पड़ गये। लोगों ने फेसबुक को हाथोंहाथ लिया। इस समय भारत में 24 करोड़ से अधिक प्रयोक्ता हैं और यह संख्या विश्व में सबसे अधिक है।" इस तरह देखा जाए तो 2010 के आस–पास जब फेसबुक का मंच लोकप्रिय होना शुरू हुआ तभी भारत में स्मार्ट मोबाइल फोन की संख्या एवं मोबाइल पर इंटरनेट का प्रयोग तेजी से बढ़ना आरंभ हुआ। दूसरी तरफ अगर हम देखें तो सोशल मीडिया समाज के सामाजिक विकास में अपना योगदान देते हुए और कई व्यवसायों को बढ़ाने में भी पहुँच रहे हैं। समाचार द्वारा ही हम अपनी वस्तुओं को ग्राहक तक प्रभावी ढंग से पहुँच रहे हैं। समाचार, जानकारी तथा अन्य बहुत सी बातें हम सोशल मीडिया के माध्यम से प्रस्तुत कर पा रहे हैं।

इन दिनों सोशल नेटवर्किंग साइट पर जुड़े रहना सबको पसंद है। कुछ लोगों का मानना है कि यदि आप डिजिटल रूप से उपस्थिति बढ़ाने का दबाव और प्रभावशाली प्रोफाइल युवाओं को बड़े पैमाने पर प्रभावित कर रही है। आंकड़ों के मुताबिक एक सामान्य किशोर प्रति सप्ताह औसतन रूप से 72 घंटे सोशल मीडिया का उपयोग कर रहा है। इस कारण युवा वर्ग को विपरित समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। जैसे तनाव, दबाव, स्मृतिभ्रंश तथा अन्य भी कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ रहा हैं आज का युवा हमें 'मोबाइल फोन ही मेरी जिंदगी है और फोन के बिना मेरा जीवन मुश्किल है' ऐसी बातें करता हुआ नजर आयेगा। आज 'टिन एजर्स' और स्कूल, कॉलेज के छात्रों में 'सेलफोन' की जबरदस्त क्रेज है। माता–पिता के विरोध और स्कूल, कैंप में मोबाइल फोन पर पाबंदी के बाद भी 'टिन एजर्स' इसका उपयोग कर रहे हैं। इतना ही नहीं हम देख सकते हैं कि "आज टिन एजर्स मोबाइल का इस्तेमाल इतना कर रहे हैं कि वह 'ॲडिक्ट' हो गये हैं। 'मोबाइल मीडिया' से ग्रस्त बच्चों का कहना है कि हमारी बातचीत के विषय अनलिमिटेड हैं। टीवी सीरीयल, फैशन, फिल्म, न्यू ट्रेंड्स आदि के बारे में हम आपस में चर्चा करते रहते हैं। एक बार 'चैटिंग' शुरू हो जाये तो खत्म नहीं होती। एक–दूसरे के साथ संपर्क स्थापित करने में मोबाइल फोन बड़ा मददगार साबित होता है।" इस बात से यह स्पष्ट हो जाता है कि सूचना दो धारी तलवार है। एक ओर इसका प्रयोग भ्रम फैलाने में किया जा सकता है तो दूसरी ओर

रचनात्मक कार्यों में भी किया जा सकता है। सूचना क्रांति के इस आधुनिक दौर में सोशल मीडिया की भूमिका को लेकर हमेशा प्रश्न उठते रहे है।

आज हम जिस कोरोना कोविड–19 महामारी से गुज रहे हैं, इन परिस्थितियों में सोशल मीडिया को शिक्षा प्रदान करने के संदर्भ में एक बेहतरीन साधन माना जा रहा है। इसके द्वारा ऑनलाइन जानकारी का तेजी से संप्रेषण हो रहा है। इसके माध्यम से ऑनलाइन रोजगार की संभावनाएँ बढ़ गयी है। जैसे वर्क फ्रॉम होम, ऑनलाइन साक्षात्कार, सभाएँ आदि तथा अन्य भी बहुत सी संभावनाएँ नये रूप में सामने आ रही है। साथ ही व्यवसाय, चिकित्सा, नीति निर्माण को प्रभावित करने में भी इसकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वर्तमान समय में शिक्षक छात्रों द्वारा फेसबुक, ट्वीटर, यु–ट्यूब, गुगल मीट आदि का प्रयोग कर शिक्षा, सूचना का आदान–प्रदान तथा व्यापार में काफी तेजी से बढ़ोत्तरी आ गयी है। छात्रों के क्लास भी इन्हीं सोशल मीडिया के उपकरणों द्वारा सफल हो रहे हैं। इतना ही नहीं परीक्षा एवं परिणाम भी ऑनलाइन ही आ रहे है। जैसे कि "सोशल मीडिया का दुरूपयोग भी कई रूपों में किया जा रहा है। इसके जरिए न केवल सामाजिक और धार्मिक उन्माद फैलाया जा रहा है, बल्कि राजनीतिक स्वार्थ के लिए भी गलत जानकारियाँ पहुँचाई जा रही है। इससे समाज में हिंसा को तो बढ़ावा मिलता ही है, साथ ही यह हमारी सोच को भी नियंत्रित करता है।" इस प्रकार हमें आज सोशल मिडिया के नकारात्मक बिंदुओं पर भी गहराई से विचार करने की आवश्यकता है।

विश्व आर्थिक मंच की एक रिपोर्ट के अनुसार सोशल मीडिया के जरिए झूठी सूचना का प्रसार उभरते जोखिमों में से एक हैं। निश्चित रूप से यह हमारे देश की प्रगति के मार्ग में रूकावट है और ऐसे में जरूरी हो जाता है। कि हमारी सरकार इसमें दखल कर इस पर लगाम लगाने का प्रयास करें। ऐसी समस्याओं से निपटने के लिए "केन्द्र सरकार ने सूचना द्वारा फेसबुक और गुगल जैसी कंपनियों की जवाबदेही तय करने का प्रयास करें। इसके तहत आई0टी0 कंपनियाँ, फेक न्यूज की शिकायतों के प्रति जवाबदेही होगी"। इस बात से स्पष्ट होता है कि जैसे–जैसे देश आधुनिकरण के रास्ते पर आगे बढ़ रहा है चुनौतियाँ भी बढ़ती जा रही है। ऐसे में भारत सरकार को कठोर कानून की जरूरत है जो सोशल मीडिया पर आपत्तिजनक सामग्री को साझा करनेवालों पर शिकंजा कसने के लिए हो।

अतः संक्षेप में कहें तो सोशल मीडिया के हमें बड़ी मात्रा में सकारात्मक फायदे नजर आते हैं, जैसे शिक्षा की प्रगति के लिए, अनुंसधान के लिए, सूचना तथा सामाजिक कार्य के लिए, ऑनलाइन रोजगार आदि तथा अन्य कई क्षेत्रों के नाम लिये जा सकते हे। दूसरी ओर हिंसाचार, दंगे–फसाद, आपत्तिजनक सामग्री, मूल्यों का हनन आदि समस्याएँ सोशल मीडिया के गलत उपयोग के कारण हमें गहरी खाई में ले जा सकती है। इसलिए कहना होगा कि यह विज्ञान का एक आविष्कार है, इसका उपयोग व्यक्ति के नैतिक और बौद्धिक कौशल के अनुसार सही–गलत रूप में होता रहेगा।

कविताएँ

सुरेन्द्र गुप्त 'सीकर'

गुमसुम–गुमसुम मन रहता है
कुछ इसका परिहार करो ना
व्यथित हृदय, व्याकुल जीवन का
कुछ समुचित उपचार करो ना

असामाजिक दुर्गतियों से
रक्तचाप घटता–बढ़ता है
असमय अनचाहे घटकों से
विषम– ज्वर प्रायः चढ़ता है
कार्यक्षेत्र के व्यावहारिक पृष्ठों
को, अनुभव से पढ़ता है
सहृदयता की पृष्ठभूमि पर
प्रेम ग्रंथ तैयार करो ना

प्रकृति सहज ही अनुशासनमय
परिवर्तन की तीव्र सहचरी
सहज बोध प्रेरित होते ही
क्रियाशीलता बने अनुचरी
ऐसे ही लालित्य कर्म से
रीझा करती प्रकृति सुन्दरी
शुभ अवसर प्रस्तुत होते ही
मधु पराग अभिसार करो ना

अन्तर्मन के कूट स्वतः ही
जगती मध्य उजागर कर दो
बूँद–बूँद मंगलमय अमृत
जीवन की गागर में भर दो
मानव के कल्याण पक्ष को
विश्व पटल आँगन में धर दो
मानवता के सम्मुख, मानव–
बनकर, सद्व्यवहार करो ना।

***

थक गयी एक प्यासी नदी जो
रेत होकर बिखरती रही है
तट खड़े देखते रह गये बस
वह किनारों को तकती रही है

तीव्र उत्साह में चल पड़ी थी
सिन्धु से मिलके अवमुक्त होगी
जानती थी नहीं यों अकारण
उसकी दुर्गति यहाँ ऐसी होगी
जो नदी स्वच्छ, निर्मल थी शीतल
एक नाले–सी बहती रही है

कागजों में नदी बह रही है
जाने क्या–क्या सहन कर रही है
क्षीण कायिक हुई तन्तु जैसी
किन्तु बन्धनों में बँध रही है
उसके अस्तित्व का सिर्फ दोहन
वह तड़पती, बिलखती रही है

कहते हैं जब शिखर से चली थी
लोक कल्याण–हित जोश में थी
मार्ग दुर्गम, जटिल थे बहुत ही
पर नदी तो कहाँ होश में थी
वह थी पागल, दिवानी निरी ही
लुट के मिटती, सँवरती रही है

यूँ तो सूखी पड़ी रह रही है
सिर्फ बरसात में चढ़ रही है
बाढ़ की कोई स्थिति बनी यदि
दोष अपने ही सिर मढ़ रही है
इसको छोड़ो, न छेड़ो ये विनती
ये नदी कब से करती रही है।

कहानी

पप्पू पास हो गया

मदन गुप्ता सपाटू
पंचकुला
मो0–9815619620

बाबू रामलाल उन्हीं दिनों से हाईटेन्शन तारों के नीचे रह रहे हैं, जब से अखबाारों के मुख्य पृष्ठों पर प्रधानमंत्री की फोटो या व्यानों की बजाय 100 से अधिक बच्चों की छोटी छोटी फोटो छपने लगीं थी और हर फोटो के नीचे उनके मार्क्स लिखे होते–99.9 प्रतिशत। कोचिंग सेंटर के मालिक की फोटो बिल्कुल सेन्टर में होती और नीचे एकेडमी का नाम बड़े बड़े अक्षरों में लिखा होता।

मां का लाडला, हर क्लास में ब्रेकें लगा रहा था। बाबू रामलाल, छोटे बाबू, बड़े बाबू और फिर सुररिंटेडेट के पदों की सीढियां चढ़ते हुए सरकारी दफ्तर में सुशोभित थे। अक्सर कई बड़े अधिकारियों की झिड़कियों, चापलूसियों, चमचागिरी, गीफटोलॉजी वगैरा–वगैरा के जुगाड़ों से अपनी कुर्सी संभाले हुए थे। कई बार 'ऊपर तक जाता है' जुमले के सहारे रिश्वत कांड में बरी होते रहे और ऊपर वालों ने भी पूरा साथ दिया। जब भी कोई गलती करता, झाड़ पड़ने पर एक ही बचता रहा। हर बार पिता–पुत्र में शर्त लगती। बाबू कहते– बर्खुरदार पास हो गया तो बाइक वरना ऑटो रिक्शा.....।

एक दिन चिर प्रतीक्षित रिजल्ट आ गया। पप्पू को सरकार पर पूरा भरोसा था कि जो कहती है वो करती है। वो है तो 'सब मुमकिन है जैसे नारों पर भरोसा था कि इस साल वैतरणी पार हो ही जाएगी। कुंभ का मेला नहीं लगेगा। हुआ भी वही। अखबार के फ्रंट पेज पर पप्पू की भी फोटो शोभायमान थी। कहावत है कि समय से पहले और भाग्य से ज्यादा किसी को नहीं मिलता और पप्पू को उम्मीद से ज्यादा और वह भी छप्पड़ फाड़ के मिला यानी 99.9 प्रतिशत। उसका नाम ऐसे चमक रहा था मानो ओलम्पिक में कांस्य नहीं, सिल्वर नहीं, सीधा गोल्ड मेडल मिला हो।

बाबू रामलाल के कलिग्स बधाईयां देने और पार्टी लेने में बिजी हो गए। मिसेज लाल की किट्टी सहेलियां उसी दिन, उनके घर पर स्पेशल किट्टी की फरमाइशें करने लगीं। मोबाइल थे कि चुप होने का नाम ही नहीं ले रहे थे। पप्पू ने भी अखबार की दस प्रतियां खरीदी। बाजार में लहराता हुआ ऐसे निकला मानों कोई इलैक्शन जीत लिया हो। लेकिन बाजार के किसी आदमी ने उसे भाव नहीं दिया क्योंकि रिजल्ट के इस महाकुंभ में सब नंगे थे। अखबार की फोटो खींच कर वह हर जगह, हर रिश्तेदार को फारवार्ड करता रहा।

श्याम को बाबू रामलाल ऑफिस से लौटे। पप्पू द्वार पर स्वागत के लिए खड़ा था। बाबू रामलाल भड़साए, 'तू क्या सोच रहा था..... बाबू शाबासी देंगे..... मिठाई का डिब्बा लाएंगे.... हार पहनाएंगे ?ये तो होना ही था। मत्था टेक कोरोना देव को। जो न आता तो ये दिन तेरे जैसे निकम्मे कैसे देखते?

पप्पू के चेहरे की घड़ी जो सुबह से 10 बजकर 10 मिनट पर अटकी हुई थी, सीधे घुम कर सवा आठ पर आ गई। बाबू रामलाल अपने लाल को गहरी निगाहों से देखते हुए चालू हो गए, 'रिजल्ट होते थे हमारे जमाने में। प्राईमरी तक तो 31 मार्च के दिन असेम्बली ग्राउंड में एक मास्टर जी लंबा सा रजिस्टर पकड़ कर बच्चों के नाम पुकारते। सुरेश रोल नम्बर 10–पास रमेश रोल नम्बर–11 फेल। आज की तरह पेपर लीक की तरह रिजल्ट पहले लीक नहीं किया जाता था। उधर पेरेंट्स भी लड्डुओं का लिफाफा लिए खड़े होते थे। किसकी लाटरी निकलेगी यह उसी वक्त पता चलता। जो बच्चे लुढ़क जाते, उनके पिता श्री स्कूल में ही उसकी छित्तर परेड शुरू कर देते। कई अपने साहिबजादों की कुटाई–ठुकाई करते हुए सार्वजनिक शोभायात्रा इस्टाईल में बाजार से घुमाते हुए घर ले जाते ताकि मेहनत न करने वाले धुरंधर ऐसे लाइव विज्ञापन देखकर सुधर जाएं। चौक वाले कालू हलवाई इतने लड्डू शाल भर न बेचता जितने उस दिन बिक जाते। जैसे चुनाव में कोई जीते, कोई हारे ढोली का दिन चंगा। मैट्रिक के रिजल्ट का आलम ही कुछ और होता। फोन भी आम नहीं थे। नारंगी रंग के छोटे से तोते पर पूरा यकीन होता था जिसे सब उंगली पर बैठ कर यही पूछ–पूछ कर उसे बोर कर देते, 'तोते तोते – मैं पास कि फेल ?' तोते से तब तक पूछते रहते जब तक बेचारा उड़ कर पास होने की कन्फर्मेशन न दे देता।

मैट्रिक का रिजल्ट अखबार में ही आता। रिजल्ट से पहले मास्टरों तक की नींद उड़ी होती। परीक्षार्थी जगराता करते। मन्ते मांगते। हमारे नगर में अखबार नौ बजे वाली बस में आते। उस दिन आधा शहर बस को रिसीव करने ऐसे पहुंचता मानों बारात आनी हो। अभी अखबार वाला बंडल बस के अंदर ही होता, कई आशावादी वालंटियर उसे कंधे पर लादकर तेजी से न्यूजपेपर वाली दूकान पर ढो देते। बंडल रास्ते में ही उधड़ जाता। सबसे पहले उन दिनों अम्बाला से छपने वाले अंग्रजी अखबार के चीथड़े उड़ जाते। एक लड़का स्टूल पर खड़ा होकर रिजल्ट एनाउंस करता। रोल नंबर 10991 पास। 92 गायब है। 93 पास.....। देखते ही देखते सारे अखबार लुट जाते।

पप्पू ने ये बातें एक बार नहीं, सालों साल चलने वाले कई धारावाहिकों की तरह कई बार सुनी थी। उसे बाबू राम लाल सी0आई0डी0 धारावाहिक के ए0सी0पी0 प्रद्युमन की तरह लगने लगे थे जो हर बार एक ही डायलाग बोलता है– 'दया कुछ तो गड़बड़ है।'

इस बार उसने सबसे पहले सरकार का, फिर भगवान का धन्यवाद किया कि वह आखिरकार पास हो ही गया वो भी फर्स्ट क्लास फर्स्ट।

हालांकि बाबू रामलाल खुद लुड़कते पुड़कते, कई बार पास होते होते बचे थे। हमेशा थर्ड क्लास थर्ड रहे। वो तो भला हो उनके पिता जी के एक वकील दोस्त का जिन्होंने एक जज की सिफारिश से उन्हें एक लॉयर डिवीजन क्लर्क भरती करवा दिया था वरना वे भी कहीं पकौड़े तल रहे होते। परंतु उनका सपना हमेशा यही रहा कि या तो उनका पप्पू आइ0ए0एस बने या फिर राष्ट्रीय पप्पू बनकर नाम कमाए।

कहानी

एक अकेली

डॉ0 रंजना जायसवाल
लाल बाग कॉलोनी
मिर्जापुर, उत्तर प्रदेश
मो0–9451814967

"अभी उम्र ही क्या है पचास का भी तो नहीं है, पूरी जिंदगी पड़ी हुई है। बच्चे कल अपनी–अपनी जिंदगी में व्यस्त हो जाएंगे तब यह अकेला कैसे रहेगा। अकेलापन क्या होता है मुझ से पूछो.." कहते–कहते बुआ जी की आँखों के कोर भींग गए, बुआ जी बाल विधवा थी। खुशियाँ उनका हाथ छुड़ाकर न जाने किस अरण्य में छुप गई थी। चिंता के घनघोर बादल उनके चेहरे पर उमड़ रहे थे। उन्होंने हमेशा सुरभि और संजय को अपनी संतान की तरह समझा था, वो भी उनसे कितना लाड़–लड़ाते थे। बुआ जी हरिद्वार के एक आश्रम में रहती थी, उनके जैसी न जाने कितनी औरतें उस आश्रम में रहती थी। पिता जी ने कितनी बार उनसे साथ चलने को कहा पर वो नहीं मानी।

"भैया! जब भाग्य ने सुहाग का सुख नहीं दिया, तब इस सांसारिक सुख को लेकर मैं क्या करूँगी। कुछ कर सकते हो तो बस भगवान से इतनी प्रार्थना करो कि वो मुझे भी जल्दी से अपने पास बुला लें। अब इस संसार का क्या मोह करना"।

पिता जी बताते थे एक बार बुआ की तबीयत बहुत खराब हो गई थी, आश्रम के प्रबंधक ने उन्हें फोन के द्वारा सूचित किया था। माँ–पिताजी पहली गाड़ी पकड़कर उनके पास पहुँच गए थे। माँ ने कितना आग्रह किया था,

"जिज्जी! हमसे ऐसी भी क्या गलती हो गई कि आपने सारे रिश्ते–नाते तोड़ लिए–हमें एक बार सेवा का मौका तो दीजिये"।

"भाभी! काहे की नाराजगी–नाराज तो वो ऊपर वाला हमसे है। मेरी आँखों के सामने एक–एक कर सब चले जा रहे हैं पर मैं अभागी अभी तक यहीं पड़ी हुई हूँ।"

बुआ नहीं आई, माँ–पिता जी को खाली हाथ लौटना पड़ा, पर उन्होंने उनसे एक वायदा अवश्य ले लिया कि वो साल में एक बार उन लोगों से मिलने जरूर आयेंगी। पिता जी कुछ कहते तो नहीं थे पर उनकी आँखें बहुत कुछ बोल देती थीं। आखिर जिस बहन को गोदी में खिलाया था, उसे इस हाल में कैसे देख पाते, पर कर भी क्या सकते थे। माँ हमेशा कहती थी कि आश्रम जब भी जाओ तो तुम्हारी बुआ आश्रम के सामने लगे पेड़ को देखती रहती है। वो अक्सर कहती थी "आश्रम की हर औरत इस पेड़ की तरह है.. जिस तरह हर साल इस पेड़ से पत्ते झर जाते हैं फिर भी ये पेड़ मजबूती से खड़ा रहता है, इस उम्मीद में कि भविष्य में कुछ अच्छा होगा.... उसी तरह जीवन में क्रमशः सब छूटता है उसके बाद भी दृढ़तापूर्वक जीवंतता के साथ जीना ही जीवन है। कान्हा को ही देख लो बचपन मे माँ–बाप छूटे, बड़े होने पर घर–परिवार, दोस्त, गोकुल फिर मथुरा भी छूटा, पर जो नहीं छूटा वो थी उनकी मधुरता, जीवन के प्रति दृष्टिकोण और सकरात्मकता.... फिर इस जीवन से क्या भागना। कभी सोचा है गंगा का ये कल–कल करता जल, तेज़ बहाव हमें कितनी शांति देती है पर सोचा है कि वो खुद कितना अशांत है, दूसरों के पापों का बोझ ढ़ोते–ढ़ोते उसके किनारे भी थक जाते हैं। उसकी उन्मादी लहरें बेचैनी से सर पटकती रह जाती हैं और अंत में वो समुद्र की गहराई में छुप जाती हैं। समुद्र का पानी यूँ ही खारा नहीं होता न जाने कितनों का दर्द कितनों के आँसू को अपने आप में समेटे रहता है।

मोक्षदायिनी गंगा पहाड़ों को छोड़ मैदान, फिर समुन्दर तक भी पहुँच जाती है, फिर भी उसकी ये यात्रा कभी खत्म नहीं होती। वो भाप बन कर बादल, फिर बारिश बनकर हमारे पास किसी न किसी रुप में पहुँच ही जाती है। सच पूछो तो दूसरों को मोक्ष देने वाली गंगा उसे भी आज तक अपनी बेचैनी से मोक्ष नहीं मिला। हम सब एक अनन्त यात्रा में हैं, एक ऐसे सफर में हैं जो कभी खत्म नहीं होगा"।

बुआ ने कितनी कम उम्र में जीवन के सत्य को समझ लिया था। पहने–ओढ़ने की उम्र में बुआ जी का रंगो से नाता टूट गया, सफेद साड़ी, चंदन का टीका, पैर में खड़ाऊँ और हाथ में तुलसी की माला लिए वो मन ही मन कुछ बुदबुदाती रहती है। पोटली में रखी माला को उनकी बूढ़ी उंगलियाँ जब कपकपाते हाथों से फेरती तो पोटली भी मानो काँप जाती। एक अजीब सा तेज था उनके चेहरे पर। जाड़ा हो या गर्मी वो मुँह अंधेरे उठकर स्नान करने निकल जाती। कहते हैं गंगा में सबके पाप धुल जाते हैं पर उस नासमझ अबोध बालिका जिसे सुहाग का मतलब भी नहीं पता था, किस पाप के बोझ को इतने वर्षों से ढ़ोती आ रही थी।

माँ–पिताजी के जाने के बाद वो ही इस घर की बड़ी थी। कोरोना की दूसरी लहर में राखी भाभी को हमसे छीन लिया था, भाभी की मृत्यु की खबर सुन कर बुआ दौड़ी चली आयीं थी। भैया बिल्कुल टूट गए थे, बच्चों के मासूम चेहरे देख–देख वह रोते रहते थे। भैया पत्थर हो गए थे। उन्हें भरोसा नहीं हो रहा था कि भाभी उन्हें इस तरह भरी दुनिया में अकेला छोड़कर चली गईं पर उसके आगे किसकी चली है। सुरभि भैया के दर्द को अच्छी तरह समझ रही थी, आखिर उसने भी तो पिछले साल किसी अपने को खोया था। वो भैया को हमेशा समझाने का प्रयत्न करती,

"भैया! भाभी का साथ हमारे साथ इतना ही था"।

जब तक भाभी जिंदा रही... भाभी के साथ उसके रिश्ते कुछ खास अच्छे नहीं रहे। भाभी के व्यवहार को देखकर ही माँ–पिताजी ने उसकी भरे–पूरे परिवार में शादी की थी, जिससे सुरभि को कभी मायके की याद न आये और वो अपनी दुनिया में खुश रहे। एक बार मायके वाले न भी खड़े हो पर ससुराल वाले उसके सुख–दुख में हमेशा खड़े रहेंगे। पर वो ये कहाँ जानते थे कि सुरभि की दुनिया तो आलोक से शुरू होती थी और उनके साथ ही खत्म हो गई। पिछले साल आलोक की कोरोना में मृत्यु हो गई। एक–एक सांस के लिए आलोक की जद्दोजहद उसे भूले नहीं भुलाती थी। साधारण सा बुखार उसकी खुशियों की बगिया उजाड़ गया था।

"अब तुम्हींको सब सम्भालना है"।

अस्पताल से किसी का फोन लेकर आलोक ने यही तो कहा था, तब उसे क्या पता था कि ये आलोक का आखिरी फोन होगा। सुरभि कितनी बार रात में सोते–सोते हड़बड़ा कर उठ जाती... क्या

आलोक को अपनी मृत्यु का आभास हो गया था या सुरभि वो जानती थी कि उनकी आँखे बन्द होते ही घर वाले यूँ मुँह फेर लेंगे। सुरभि की मानो सारी दुनिया उज़ड़ गई, आलोक के बिना वो इतना लंबा जीवन कैसे काटेगी।

आलोक के जाने के बाद उसे पग फेरे की रस्म निभाने के लिए मायके जाना ही पड़ा पर उसे क्या मालूम था कि एक रस्म को निभाने के लिए आने वाली सुरभि को जीवनभर भैया के पास ही रहना पड़ेगा। आलोक के जाने के बाद सुरभि को ऐसा लगा मानो किसी ने उसके सर पर से छत खींच ली हो और वो खुले आसमान के नीचे आ गई हो। सुरभि का दर्द खुली किताब की तरह था पर उसके अक्षरों को पढ़ने की कभी किसी ने कोशिश नहीं की।

आलोक के जाते ही ससुराल वालों ने नाता तोड़ लिया,

"जब बेटा ही नहीं रहा तो बहू और उसके बच्चों को लेकर क्या करना"।

जो देवर भाभी–भाभी कहते नहीं थकता था उसने विधवा भाभी और उसके बच्चों की जिम्मेदारियों के बोझ के डर से ऐसा नाता तोड़ा कि कभी पलट कर भी नहीं देखा। सच ही तो है आज के युग में बिना मतलब के कौन किसका साथ देता है। बिना जरूरत के तो पेड़ भी गिरा देते है अपने पीले पत्तों को फिर वो तो इंसान ही थी। ससुराल वालों ने उसे निकाल दिया था अपने जीवन से उखाड़ फेंका था ख़र–पतवार की तरह... सच कहा है किसी ने इस संसार में अपना कोई नहीं होता सब अपने लिए होते हैं।

आलोक का परिवार मध्यवर्गीय परिवार था, जिंदगी में पैसों से हाथ भले ही तंग रहे पर परिवार में खुशियाँ और प्यार भरपूर था आलोक एक प्राइवेट नौकरी में काम करते थे, लॉकडाउन की वजह से नौकरी भी जाती रही। थोड़ी बहुत जमा पूंजी थी, जो कोरोना में उनके ईलाज में खर्च हो गई। सुरभि तन मन और धन से पूरी तरह से टूट चुकी थी।

"धन का क्या है वो तो आता–जाता रहता है".....

आलोक हमेशा यही तो कहते थे, पर उन्हें क्या मालूम था धन और तन के जाते ही लोगों के मन भी चले जाते हैं। शायद इसलिए ससुराल वालों ने आलोक के जाते ही सुरभि की तरफ से आँखें फेर ली और हाथ खींच लिए थे।

कहते हैं माँ से मायका और नानी से ननिहाल... सुरभि जीवन भर अपने पिता की परी रही पर सही मायने में वो माँ का ही प्रतिबिंब थी। सहना और झुकना उसने माँ से ही सीखा था। माता–पिता कब का उसे छोड़ कर इस दुनिया से जा चुके थे, न चाहते हुए भी थक हार कर उसे भाई के दरवाजे पर आना ही पड़ा। जानती थी। उस दरवाजे पर उसका स्वागत कैसा होगा, पर इस भरी दुनिया में वह जाती तो कहाँ, शादी के पहले का उसका वह कमरा खोल दिया गया था, घर में लोग ही कितने थे। उसकी शादी के बाद उस कमरे को स्टोर रूम की तरह प्रयोग में लाया जाता था। घर का सारा कबाड़ उसी कमरे में रखा जाता था, उसका जीवन भी तो एक कबाड़ की तरह ही हो गया था जिसे इधर से उधर धकेल दिया गया था। सब लोग अपने जीवन में आए इस कूड़े को हटा देना चाहते थे पर वह जाती भी तो कहाँ.....

सुबह से लेकर शाम तक वह रसोईघर में ही जुटी रहती, राखी भाभी को खुश रखने का कोई भी मौका छोड़ना नहीं चाहती थी। भाभी को उसके ऊपर जरा भी दया नहीं आती थी, आलोक को गए अभी दिन ही कितने हुए थे।

पर उसके दुख को किसी ने अपना दुख न समझा। कितनी बार वह रातों को उठ–उठ कर चौंक जाती, उसका तकिया आँसुओं से भींग जाता, पर उसके आँसुओं को पोंछने वाला भी कोई नहीं था। भैया की भाभी के आगे कभी हिम्मत नहीं पड़ी, भाई ने कभी उसके सर पर हाथ रख कर उसे सहारा देने की कोशिश भी नहीं की, वह जानती थी कि इस घर में उसे रखने के लिए भैया को कितना संघर्ष करना पड़ा था पर वो जाती भी तो कहाँ.....

इस लॉकडाउन में सबकी नौकरियां छूट रही थीं, भैया सरकारी नौकरी में थे, गनीमत थी कि उनकी तनख्वाह समय–समय पर मिल रही थी पर अचानक से दो आदमियों के बढ़ जाने से घर पर अतिरिक्त बोझ आन पड़ा था, सुरभि यह अच्छी तरह से समझ रही थी। चाहती तो वो भी थी कि चार पैसे कमाकर भैया की मदद कर सके, कहीं न कहीं खुद के आत्म सम्मान के लिए ये जरूरी भी हो गया था। कितनी बार चाहा था उसने कि वह कहीं किराए का मकान लेकर अपना काम शुरू करे, पर ऐसे माहौल में वह जाती भी तो कहाँ ?जहाँ लोगों की नौकरियाँ छूट रही थीं, वहाँ उसे नौकरी देने वाला कौन था। कितनी बार सोचा कि साड़ी का फॉल–पिको करके ऊपरी खर्च निकाल ले, पर लोग घर से बाहर निकलते ही कहाँ थे। यहाँ खाने के लाले पड़ रहे थे, पहनने–ओढ़ने की सुध किसे थी।

नीतू ने कितनी बार कहा कि पापा की तस्वीर दीवर पर लगा दे, पर न जाने क्यों अचानक से ये दीवारें पराई लगने लगी थी। आप जिसे प्रेम करें वो भी आपसे प्रेम करे ये जरूरी तो नहीं.... वैसे भी प्रेम कब अपने मूल स्वरूप में लौटता है। मायका भी तो कुछ ऐसा ही होता है, जिन दीवारों के इर्द–गिर्द सारा बचपन बीतता है, जब आप उन दीवारों के पास वापस लौटकर आते हैं तो पता चलता है कि वो दीवारें कब का आपको छोड़ चुकी होती है।

ये वही दीवारें थी जिन्हें पकड़–पकड़ कर उसने चलना सीखा था, यही दीवारें कभी उसके जीवन की पहली स्लेट थी, तो कभी यही दीवारे माँ के गुस्से से बचने का सहारा.... इन्हीं दीवारों के पीछे छुपकर उसने अपनी शादी की चर्चा सुनी थी, तो कभी इन्हीं दीवारों के पीछे छिपकर पहली बार उसने आलोक को देखा था। उसकी शादी के वक्त इन्हीं दीवारों पर कोहबर का चित्र बना था और विदा होते वक्त हल्दी लगे हथेलियों की छाप की गवाह भी तो यही दीवारें होती थीं। कितनी बार इन दीवारों के सहारे उसने आलोक को याद करते–करते पूरी रात काट दी थी। रात के घने अंधेरे में ये दीवारें अचानक से उसे अपनी सी लगने लगती थी। शायद घर में रहने वालों की तरह वो भी दिन के उजाले में अपना रंग बदल लेती थी।

कोई नहीं सोचता कि औरत को खरीदना कितना आसान होता है। वो बिक जाती है जब उसकी सास लाड़ से अपनी बहू के सर पर हाथ फेरकर कहती है कि मेरी बहू दूसरों की तरह नहीं, वो बिक जाती है जब उसके बच्चे कहते है मेरी माँ मुझे समझती है। सच कहते हैं लोग औरत बहुत सस्ते में बिक जाती है। उसके कान दो मीठे बोल के लिए तरसते रहते हैं, उसकी आँखें तरसती रहती है

अपने पति और ससुराल के लोगों की आँखों में अपना सम्मान देखने के लिए वो खोजती रहती है जीवन भर अपने रिश्तों और अपनों के बीच में अपने सम्मान को, पर इस दुनिया में मौत आसान है जिंदा रहना उससे कहीं ज्यादा मुश्किल है।

भैया ने आलोक की मृत्यु और सुरभि के मायके आ जाने की खबर बुआ जी को फोन से दे दी थी। कितना तड़पी और छटपटाई थी, वो... छटपटाई और रोई भी बहुत थी। आलोक का यूँ चला जाना फिर ससुराल वालों का व्यवहार.... सुरभि तो जी भर कर रो भी न पाई थी। वो अक्सर रात में तारों भरे आकाश में माँ–पिता जी को ढूंढने लगती। माँ हमेशा कहती थी मरने के बाद इंसान तारा बन जाता है।

"माँ! तुम कहाँ हो, इस दुःख भरी दुनिया में मुझे यूँ अकेला छोड़कर क्यों चली गई। तुम तो हमेशा मुझे अपने आँचल की छाँव में हर दुख मुसीबत से बचा लेती थी"।

बुआ जी अक्सर सुरभि को फोन करती थी और समझाने का प्रयास करती,

"सुरभि! अपने आप को सम्भाल तू कमजोर पड़ जाएगी तो बच्चों को कौन सम्भालेगा।

"बुआ जी जीने का मन नहीं करता, आलोक के बिना मैं कैसे जिऊँगी"।

कहते–कहते सुरभि सिसक उठी थी,

"ऐसे कैसे काम चलेगा बिटिया... बच्चों का मुँह देख, वो अब तुम्हारे सहारे है। तू मुझे देख आखिर मैं भी तो तेरे फूफा के बिना जिंदा ही हूँ। मेरे आगे–पीछे कौन है। भगवान ने बहुत कृपा की। तेरे लिए जीने का कोई न कोई सहारा तो है, पहले की बात कुछ और थी अब तुझे अपनी भाभी से बनाकर चलना ही होगा। दो बात सह लेना पर पलट कर जवाब न देना। तुझ से क्या छिपा है तू तो जानती ही है अपनी भाभी का स्वभाव.... क्या कहती.. आज तक सुनती और सहती ही तो आई थी वो, कभी सास की बातें तो कभी ससुर का गुस्सा... माँ–पिताजी के जाने के बाद मायके की इज़्जत बचाने की खातिर साल में दो बार आना ही पड़ता था। भाभी की जलती निगाहें वो विदाई में एक किलो मिठाई और एक साड़ी के लिए उनका बुदबुदाना, अब तक सब सहती ही तो आई थी वो....

सुरभि की उंगलियाँ तेजी से चल रही थी, सबके खाने का समय हो रहा था। जानती थी भाभी के जाने के बाद किसी के खाने का मन नहीं करता पर पेट तो नहीं मानेगा न.... तभी किसी की आहट से सुरभि ठिठक गई। बुआ जी वहीं पास पड़े पटरे पर बैठ गई और कहने लगी–"सुरभि अपने भाई को समझा.. जाने वाले को भला कौन रोक पाया हैं पर उसकी याद में अपने आप को तिल–तिल जलाना कहाँ की समझदारी है। बिटिया अभी तो मैं यहाँ हूँ पर कल आश्रम भी तो वापस जाना है। जानती हूँ तू अपने भाई और उसके बच्चों का बहुत ख्याल रखेगी पर एक वक्त के बाद इंसान को ऐसे रिश्ते की जरूरत होती ही है जिससे वो अपने मन की बात कह सके। शाम को जब वो दफ्तर से आये तो घर पर कोई उसका इंतजार करने वाला हो। कोई उसके लिए सजे–सँवरे उसके लिए व्रत–त्योहार करें, यूँ अकेले जिन्दगी नहीं कटती"।

सुरभि आश्चर्य से बुआ जी को देख रही थी, कौन कहता है लड़के और लड़कियों में फर्क नहीं होता। सच कहते हैं लोग समाज औरतों के लिए कभी नहीं बदलता। बुआजी आज तक जिस अकेलेपन के दंश को झेल रही थी.. उन्हें भैया का अकेलापन तो दिखाई दिया था, पर उसका..... क्या?.....

कविताएँ

रंगरेजा

तू रंग मेरी रूह को
कुछ इस तरह
अपने ही रंग में ऐ रंगरेजा
तेरे हर रंग–सी रंगी रहूँ
तेरे हर रंग–सी देखूँ मैं
तू रंगे जिस रंग मुझको
उस रंग में डूबे हर एक तागे में
रंग रंग–सी बसूँ मैं...
मेरे रंगरेज
आ रंग मेरी रूह को
बस हो जिसमें
तेरे इश्क का वो रंग बसा...
छोड़ूँ जब–जब यह चोला
दिखे तू और मैं
रंगे एक ही रंग में
एक दूजे का थाम
यह साथ हमेशा...
जाने कितने ही सफर
युगों तक तय करें हम
बदल–बदल कर यह चोला...
तू रंग मेरी रूह को
अपने ही रंग से
ऐ मेरे रंगरेजा...

प्रगति गुप्ता
जोधपुर, राजस्थान
9460248348

बिखरेंगे ही

शान्त रहकर जितना
समेटती हूँ अंतः में तुमको
अन्दर ही अन्दर उतने ही वेग से
बिखर जाते हो...
आवाज तो कभी
स्पर्श की स्मृतियाँ बनकर
मेरे मन और हृदय के
हर किनारे को तोड़ रोम–रोम में
एहसासों का रूप ले सर्वत्र ही...
नहीं होता आसान महसूस किये
अव्यक्त प्रेम की
आवाज और स्पर्श को भी
स्वयं में छिपा कर रख पाना
अन्तर्मन में ही कहीं
बिखरना है इनको भी
पहले अंतः फिर बाहर भी
हर हाल में
कभी अधरों की
अनकहीं मुस्कुराहट बन
तो कभी
भावों का उद्वेग बन
मानसपटल पर सर्वत्र ही....

कहानी

कुर्सी

प्रदीप उपाध्याय
नगर, मेंढ़की रोड़, देवास (म.प्र)
मो.– 9425030009

वही आम के पेड़ हैं, वही कुर्सी है और वही चारों ओर बिछी हरीतिमा है। जसवन्ती के पौधों पर पुष्प पल्लवित हो रहे हैं, गुलाब बहार पर हैं, वासन्ती बयार है और आम भी बहुत बौराये हैं, चिड़ियाएँ चहचहा रही हैं, रंग–बिरंगी चिड़िया और पंछी डेरा डाले हुए हैं और क्यों न डाले, उनके दाने–पानी की व्यवस्था बाबूजी ने एक बार प्रारम्भ की तब भला अब बन्द कैसे हो सकती थी। पानी के सकोरे भरकर रखने का अब नित्य कर्म हो गया था, पक्षियों के लिए दाना भी नियमित रूप से डाला जा रहा था। पास ही में सूखा कुआ भी है जिसमें आज पानी भले ही न हो, कबूतरों ने अपना ठिकाना जरूर बना लिया है और रोजाना दाना चुगने कुएँ के ऊपर बने जाल पर आ उनकी आदत में शुमार हो गया था।

आज मैं भी आम्र वृक्ष की छांव में उसी कुर्सी पर बैठा हुआ हूँ और पंछियों के गीत सुन रहा हूँ। सूर्य किरणों की अठखेलियों को आम्र वृक्षों की टहनियों के बीच महसूस कर रहा हूँ। ठीक उसी तरह, जब बाबूजी एक वर्ष पूर्व इसी कुर्सी पर इन्हीं आम्र वृक्षों की छांव में बैठकर महसूस करते थे। उन्होंने फलदार वृक्षों के साथ आसपास अच्छा बगीचा विकसित करवाया था। इसी परिसर में बहुत बड़ा सा मकान बना हुआ है जो बहुत जीर्ण–शीर्ण अवस्था में हो गया था। किसी को देखरेख करने की फुर्सत ही नहीं थी। बाबूजी ने बहुत ही लगन से उसका निर्माण करवाया था। शायद इसीलिए उनका लगाव भी उससे ज्यादा था। इधर मैं स्वयं नौकरी के कारण उज्जैन, शाजापुर, इन्दौर और भोपाल इन बत्तीस वर्षों में भटकता रहा, मुझे तब भी नहीं मालुम था कि मेरी मंजिल कहाँ है, बस उस राही की तरह बेमकसद चलता चला जा रहा था जिसकी न तो कोई मंजिल थी और न कोई ठिकाना। मैं सोचता रहता था कि कहाँ तो मैं इतनी आशावादी सोच एवं उत्साह के साथ जीवन जीने वाला व्यक्ति, इतनी कुण्ठा और निराशा में कैसे चला गया। जबकि बाबूजी छयासी वर्ष की वय पूर्ण करने के बाद भी पूर्ण रूप से आशावादी रहे, उनका साहस और जोश बरकरार था तथा उत्साहपूर्ण जीवन जी रहे थे।

वे प्रारम्भ से ही आशावादी रहे तथा पूर्ण उर्जा से अपने काम को अंजाम देते थे। बहुत ही स्वाभिमानी भी रहे। किसी का एहसान लेना पसंद नहीं था। उनके ऊपर अपनी माता का प्रभाव अधिक था। एक बार का उन्होंने किस्सा सुनाया था कि रास्ते चलते उन्हें चाँदी का आभूषण पड़ा हुआ मिल गया जिसे उठाकर वे घर पर ले आये और बड़े ही उत्साह से माँ के हाथ पर रख दिया। माँ बहुत नाराज हुई और उस चाँदी के आभूषण को वापस उसी स्थान पर रख कर आने को कहा और यह भी नसीहत दी कि बेटा हराम की कमाई की तरफ कभी ध्यान मत देना। कम मिले लेकिन मेहनत का मिले, रूखी–सूखी खाकर जीवन बसर कर लेना किन्तु किसी का हक मारकर सुख की कल्पना मत करना। इस बात को बाबूजी ने जीवन भर गांठ बांधकर रखा।

वे रोजाना सुबह–शाम आकर परिसर के भवन की मरम्मत और अतिरिक्त निर्माण करवा रहे थे। हालाँकि मेरे शासकीय सेवा से सेवानिवृत्त होने में तब दो वर्ष बाकी थे लेकिन बाबूजी इस मकान को पूर्ण रूप से व्यवस्थित कर देना चाह रहे थे। वैसे शहर के मध्य भी बड़ा सा मकान हैं जिसमें सभी परिजन मिलजुलकर रह सकते थे लेकिन बाबूजी मेरे स्वभाव से परिचित थे। वे जानते थे कि मैं एकांतप्रिय व्यक्ति हूँ, अंतर्मुखी हूँ और प्रकृति के सानिध्य में रहना पसंद करता हूँ। वे अपने मिलने–जुलने वालों से कहते भी थे कि मुन्ना रिटायर होने के बाद इसी मकान में रहेगा। हम लोग भी यहीं रहेंगे। हम सभी ने अपने–अपने कमरे भी निर्धारित कर लिये हैं। कुछ दिन यहाँ तो कुछ दिन शहर वाले मकान में राजू के साथ रह लेंगे।

वैसे भी प्रत्येक तीज–त्यौहार पर उनको हमारा इंतजार रहता था। अब चूँकि राज्य सरकार की सेवा में उच्च पद पर पदस्थ होने से छुट्टियों की दिक्कत रहती थी तथापि प्रयास तो यही रहता था कि हरेक तीज–त्यौहार देवास आकर ही मनाया जाए लेकिन जब आना नहीं हो पाता था तब बाबूजी बहुत ही उदास हो जाते थे। मुझे याद है कि मकर संक्रांति पर हम लोग तिल भी सबसे पहले उन्हीं के हाथों से लेते थे। मान्यता है कि जिनके हाथों से तिल लेते हैं अगला जन्म भी उन्हीं के यहाँ होता है। इसी तरह होली–रंगपंचमी पर गुलाल भी सबसे पहले वे ही बड़े उत्साह के साथ हम सभी को लगाते थे। अब जब सेवानिवृत्ति का समय नजदीक आता जा रहा था तब जब भी हम घर आते तो उनका प्रश्न यही होता था कि बेटा अब जल्दी आ जाओ। भानू का भी यहीं ट्रांसफर करवा लो या फिर बहू और उसकी नौकरी छुड़वाकर यहीं देवास में नर्सिंग होम खुलवा दो, अपने पास जगह की वैसे भी कोई कमी तो है नहीं।

उधर बेटे से जब मैं उसके बारे में पूछता तो उसका इस बारे में मत भिन्न रहता। वह तथा बहू अपने केरियर के प्रति ज्यादा चिन्तित दिखाई दिये। नये जमाने की शायद यही नई सोच है। जहाँ भावनाओं से ज्यादा भौतिक पक्ष को अधिक तरजीह दी जाती है। उनकी सोच यह थी कि वह और रिंकु कुछ वर्षों तक शासकीय सेवा में ही रहेंगे, उसके बाद ही कुछ सोचेंगे। वैसे भी पति–पत्नी दोनों ही विशेषज्ञ डॉक्टर हैं और ऐसे में उन्हें देवास में काई विशेष स्कोप दिखाई नहीं दे रहा था। वे चाह रहे थे कि हम लोग भोपाल में उनके साथ ही रहें क्योंकि उनकी दोनों की नौकरी भोपाल में हीथी। मेरी मजबूरी यह थी कि मैं माता–पिता की इच्छाओं का दमन भी नहीं करना चाहता था क्योंकि सरकारी नौकरी में रहते उनके साथ रहने का ज्यादा मौका भी नहीं मिल पाया। वैसे मैंने कोशिश की थी कि वे मेरे साथ ही रहें लेकिन वे हमेशा दो–चार दिन रहकर वापस देवास की राह पकड़ लेते। मैं भी जानता हूँ कि व्यक्ति की जहाँ जड़े रहती हैं वहाँ वह अभावों में भी चैन से रह लेता है।

अब जब इस बार देवास आया था तो देखा कि बाबूजी बहुत ही उदास हैं, उनका रूटीन वही था, सुबह और शाम इसी मकान पर आकर मकान के काम की प्रोग्रेस देखना। हमें भी साथ लेकर आते और हो रहे सभी कामों को दिखाते और यदि काम की हम लोग तारीफ कर देते तो बहुत ही खुश भी होते। मुझे स्मरण है कि मुझे तीन दिन हो गये थे और शाम को ही लौटना था। दिन में पोते का जन्मदिन शहर वाले घर पर ही मनाया। भोजन आदि से निवृत्त होकर लगभग चार बजे बाबूजी के साथ इस मकान पर पहुँचे, बाबूजी तब कुछ थके–थके से लग रहे थे। हमें लगा कि एक्जरशन अधिक होने की वजह से शायद ऐसा हो। तब उनकी निगाहें भी कुछ अलग ही अपनी बात बयां कर

रही थीं लेकिन उन्हें मैं शायद पढ़ नहीं पाया। बेहतर होता कि वे लफ्जों से ही अपनी बात कह देते। अभी जब पिछली बार आया था तब मेरा जन्मदिन भी था, मैंने चरण छूकर आशीर्वाद लिया था तब उन्होंने अपनी उम्र भी लग जाने का आशीर्वाद दे दिया। मैंने टोका भी कि अब इतनी लम्बी आयु लेकर क्या करुंगा। तब उन्होंने यह भी पूछा था कि रहने के लिए कब आ रहे हो। मैंने कहा था कि अब जल्दी आने के लिए ही तो स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति ले ली है, शीघ्र ही पेंशन प्रकरण और दूसरे काम निपटा कर आ जायेंगे। यही आने के लिए ही तो मैंने भोपाल से इन्दौर ट्रांसफर करवाया था लेकिन भानू की इच्छा है कि रिटायरमेंट के बाद अब उसके साथ भोपाल ही रहें। इसपर बाबूजी ने भी कहा था कि वे भोपाल जाने में कौन सी रूकावट डाल रहे हैं। अपना आधा जरूरी सामान यहाँ भिजवा दो बाकी सामान भोपाल भिजवा दो। आठ–पन्द्रह दिन यहाँ आ जाओगे तो मुझे भी हिम्मत रहेगी, हालाँकि राजू तो है ही यहाँ और अच्छी सेवा भी कर रहा है लेकिन उसे उसके व्यवसाय से फुर्सत भी तो नहीं मिलती। प्रापर्टी के कितने झगड़े चल रहे हैं, तुम यहाँ रहोगे तो ही मुझे बहुत बल मिलेगा, तुम्हें कुछ करने की जरूरत भी नहीं है, बाकी सब तो मैं खुद ही निपट लूंगा। उनकी बात सुनकर मैं बाबूजी के हौंसले का कायल हो गया था।

इस बार पता नहीं क्या बात थी कि वे पक्का वादा लेने पर आमादा थे कि तब तक सामान लेकर आओगे। मैंने भी तय कर लिया था और उसके अनुसार ही कह भी दिया था कि बस पन्द्रह तारीख को सामान ले आयेंगे, उसके पहले बचा हुआ काम पूरा करवा लेते हैं। एक तारीख तो हो ही गई है, अब चार तारीख को आयेंगे तो उज्जैन भी चले चलेंगे और नागदा चलकर ताऊजी की तबियत का हाल–चाल भी जान लेंगे। इतनी बातों के बाद उनके चेहरे पर खुशी और संतोष का भाव आ गया था। और तत्काल ही बोल उठे थे कि अब यहाँ आ जाओगे तो कहीं भी दो दिन से ज्यादा जाने नहीं दूंगा। मैंने भी कृत्रिम भाव प्रकट करते हुए कहा था कि नहीं, फिर तो यहाँ आना मुश्किल होगा क्योंकि मैं बंध जाऊँगा। खैर यह बात तो आई–गई हो गई लेकिन जब उन्हें वहीं छोड़कर इन्दौर जाने को उद्धृत हुए और अपने डॉग टफी को भी ले जाने लगे तो इसी कुर्सी पर बैठे–बैठे उन्होंने कहा था कि इसे क्यों ले जा रहे हो, अभी फिर वापस भी तो आना है। तब मैंने कहा था कि यह यहाँ परेशान करेगा, बाद में फिर लेकर आ जायेंगे लेकिन मुझे क्या पता था कि जिन्हें शाम को सात बजे चलते–फिरते छोड़कर जा रहे हैं, इन्दौर पहुँचकर पुनः फोन पर चर्चा करते हैं और देवास के शहर वाले घर पर मिलने आने वाले परिचितों और रिश्तेदारों से बातचीत और हँसी–मजाक करते रात्रि के ग्यारह बजे उनके अस्पताल में भर्ती होने और उनके पास तक हमारे देवास पहुँचने के पहले ही उनके दिल की धड़कन उनका साथ छोड़ दिया और कौन जानता था यह दुनिया छोड़ देने का समाचार रास्ते में सुनने को मिलेगा। सहसा किसी को विश्वास भी नहीं हुआ था। आज इस कुर्सी पर बैठकर आम्र वृक्षों के नीचे बाबूजी के होने का अहसास अब भी है। लगता है कि वे अब भी यहीं कहीं आसपास मौजूद हैं और कह रहे हों कि तुम और भानू आ तो गये हो लेकिन कुछ समय पूर्व आ जाते तो कितना अच्छा होता।

कविताएँ

डॉ. कुसुम सिंह 'अविचल'
रतनलालनगर, कानपुर (उ.प्र.)
मो.–9453815403

गीत सम्राट– नीरज

गीत सम्राट थे, प्रेम के उजास थे
पंक में खिले कमल, फूल के पलाश थे
थी महक सुगन्धिता, सुवासिनी, सुहास थे
थे गुलाब शब्द–शब्द चुभन एहसास थे।

मंच की थे शान वो, थे सदन की जान वो,
गीत जो भी लिख दिया, बन गया महान वो
गीतों संग जी लिये, तीखे विष को पी लिए
गीतों को जो स्वर दिए, गीत अमर हो लिये

कह सके न कुछ मुखर, भाव जो गये ठहर
लिख दिये जो मौन हो, शब्दों में गये बिखर
सुर के संग, स्वर दिये, ताल छन्द गढ़ गये
मुक्त चली लेखनी सब नियम सिहर गये

जब जहाँ भी पढ़ दिया, सबको मुग्ध कर दिया
सजल नयन हो गये, कण्ठ अवरुद्ध हो गया
प्रातः की प्रभा थे वो, साँझ की विभा थे वो
भावना थी शुचि सरल, पारस सी आभ थे वो

गीतों की बरात संग, बढ़ रहा था कारवाँ
नीरज के गीत थे, चल रहा था संग जहाँ
अब वो गीत थम गये, सुर व स्वर शमन हुए
लय व ताल शांत है, गीतों को नमन हुए

जीवन्तता की मूर्ति वो, किंवदन्ति एक बन गये
प्यार का नशा किए, प्रेम सिन्धु तर गये
कालजयी गीतकार, गीतों संग सो गया
मधुर, मृदुल कलमकार, अमरता में खो गया।

नीरज प्रयाण

पद्मभूषण, पद्मश्री कवि
गीतों के सम्राट थे नीरज
धरती की माटी से जुड़कर
आसमान के ताज थे नीरज

दिल का दर्द कलम में उतरा
काव्य विधा के बंधन टूटे
वीणा के सुर वाणी में उतरे
साज और आवाज थे नीरज

तुम युग पुरुष प्रणेता नीरज
गीतों के अमर पुरोधा नीरज
झिलमिल चाँद सितारों के संग
अम्बर के ध्रुवतारा नीरज

गीत बिछाए गीत ही ओढ़े
गीतों संग जीकर गीतों संग सो गये
गीतों संग सुर और स्वर बिखराते
किंवदन्ती एक बन गये नीरज।

लघुकथा

जब नेता पुत्र ने गाड़ी ठोंकी

सुरेश सौरभ
निर्मल नगर, लखीमपुर
उत्तर प्रदेश

जब मैं अपने मित्र पैनी लाल से उनके घर मिलने गया, तब वह बड़ें गुस्से में अपने बेटे को डांट–फटकार रहे थे। मैंने उन्हें टोकते हुए कहा–भाई प्रधान जी क्या हुआ?काहे प्रधान सेवक की तरह लाल–पीले हो रहे हो, और बेवजह अपने लाडले को डाँट रहे हो।

वह ऐंठ कर बोले–नालायक, कहीं बाइक ठोंक कर आ रहा है। वैसे भी आजकल नेता किसानों पर गाड़ी चढ़ाने, उनके लिए, कील–काँटे ठोंकने के लिए रूसवा और बदनाम हो रहे हैं, ऊपर से यह लौंडा मेरी जान आफत में डाले घूम रहा है। अगर कहीं फंस गया, फिर तो अपनी राजनीति की चलती–फिरती दुकान का भट्ठा बैठ जायेगा।

मैंने लड़के की ओर प्रश्नवाचक दृष्टि से देखते हुए कहा–क्यों बेटा! कोई कम्पलेन तो नहीं हुई तुम्हारी पिता दूबे जी की और तुम्हारी?

वह सचिन तेन्दुलकर की तरह बहुत मुलायम आवाज में बोला–हल्की–फुल्की, चोट–चपेट आई थी। उनकी दवा–दारू करा के आ रहा हूँ। कुछ पैसे भी उन्हें दे दिये। टेन्शन वाली कोई बात नहीं।

'किसी ने वीडियो तो नहीं बनाया घटना का?

'नहीं?–कह कर लड़के ने मायूसी से सिर झुका लिया।

तब प्रधान जी तैश में बोले–तेरी क्या आगे–पीछे–दांए–बांए दस–बारह आंखें हैं, जो जान गया किसी ने वीडियों नहीं बनाया। मैंने कहा–अरे भाई! वैसे भी नेता, मंत्री बड़े बुजुर्ग कहतें हैं कि बच्चों से गलतियाँ कभी–कभी हो जातीं है। मामला सलट चुका है, काहे हलकान हुए जा रहे हैं।

पैनी लाल–अपनी राजनीति पर सरपट दौड़ रहे बिजनेस पर किसी तरह से बट्टा नहीं लगाना चाहता।

मैंने कहा–यहाँ राजनीति के तमाम चट्टे–बट्टे ऐसे–वैसे ही हैं। कभी नेट पर जाकर उनका इतिहास खंगाला, तब पता चल जायेगा। कितने जयचंद, नटवरलाल और हिटलर संसद और विधान सभाओं में शोभा पा रहे हैं, चार चाँद लगा रहें हैं। यूँ समझो तमात नेता अपने अपराधों की लंबी फेहरिस्त के कारण ही मंत्री विधायक बन कर, गोदी मीडिया में रोज अपना सामान्य ज्ञान पेल रहे हैं। फिर आप अपने लड़के की, दुअन्नी सी दुर्घटना के लिए, अपने पेट में, काहे कार्बन गैस बढ़ा, अपना तनाव बढ़ा रहे हैं, सिरदर्द बढ़ा रहे हैं।

अब प्रधान जी शान्त होकर अपने मोबाइल पर कुछ नेता–मंत्रियों की कुडलियां खंगाल रहे थे, जो पहले पेशेवर कुख्यात अपराधी रहे थे। अब उनका, चेहरे से सारा तनाव जाता रहा और मंद–मंद मुस्कुराने लगे।

लघुकथा

निगेटिव रिपोर्ट का कमाल

घनश्याम अग्रवाल
अकोला 444 001 (महाराष्ट्र)
मो.– 9422860199

10 दिन की जद्दोजहद के बाद एक आदमी अपनी कोरोना नेगटिव की रिपोर्ट हाथ में लेकर अस्पताल के रिसेप्शन पर खड़ा था।

आसपास कुछ लोग तालियाँ बजा रहे थे, उसका अभिनंदन कर रहे थे। जंग जो जीत कर आया था वो। लेकिन उस शख्स के चेहरे पर बेचैनी की गहरी छाया थी। गाड़ी से घर के रास्ते भर उसे याद आता रहा "आइसोलेशन" नामक खतरनाक और असहनीय दौर का वो मंजर। न्यूनतम सुविधाओं वाला छोटा सा कमरा, अपर्याप्त उजाला, मनोरंजन के किसी साधन की अनुपलब्धता, कोई बात नहीं करता था और न ही कोई नजदीक आता था। खाना भी बस प्लेट में भरकर सरका दिया जाता था।

कैसे गुजारे उसने वे 10 दिन, वही जानता था।

घर पहुँचते ही स्वागत में खड़े उत्साही पत्नी और बच्चों को छोड़ कर वह शख्स सीधे घर के एक उपेक्षित कोने के कमरे में गया, जहाँ माँ पिछले पाँच वर्षों से पड़ी थी। माँ के पावों में गिरकर वह खूब रोया और उन्हें लेकर बाहर आया। पिता की मृत्यु के बाद पिछले 5 वर्षों से एकांतवास (आइसोलेशन) भोग रही माँ से कहा कि माँ आज से आप हम सब एक साथ एक जगह पर ही रहेंगे।

माँ को भी बड़ा आश्चर्य लगा कि आखिर बेटे ने उसकी पत्नी के सामने ऐसा कहने की हिम्मत कैसे कर ली?इतना बड़ा हृदय परिवर्तन एकाएक कैसे हो गया?बेटे ने फिर अपने एकांतवास की सारी परिस्थितियाँ माँ को बताई और बोला अब मुझे अहसास हुआ कि एकांतवास कितना दुखवादी होता है?

बेटे की नेगेटिव रिपोर्ट उसकी जिंदगी की पॉजिटिव रिपोर्ट बन गयी (अनाम लेखक)

इसके आगे की कथा मैंने जनहितार्थ लिखी।

बेटे ने अपनी निगेटिव रिपोर्ट को चूमते हुए देखा कि कोराना वायरस दो मीटर दूर खड़ा होने की इजाजत मांगा रहा है। बेटा हाथ जोड़कर बोला–तुम्हारे कारण मुझे दस दिन की तकलीफ तो हुई, पर मेरी माँ की पाँच साल की तकलीफ दूर हो गई। तुम्हारा बहुत....बहुत" कहते बेटे की आँखों से दो बूँद धन्यवाद टपक पड़ा।

वायरस की भी आँख भर आई बोला– "हम अति सूक्ष्म हैं तो क्या?माँ–बाप तो हमारे भी होते है और हम उन्हें अपने साथ ही रखते हैं। खैर, अपना और माँ–बाप का ख्याल रखना। याद रहे दवाओं के साथ माँ–बाप की दुआएँ भी लो तो इम्युनिटी जल्दी बढ़ती है। अच्छा तो अब हम चलते हैं।"

"क्या अब यहाँ से सीधे वापिस चीन जाओगे?" बेटे ने पूछा

नहीं नहीं, इतनी जल्दी नहीं। अभी उन कुछ घरों में और जाना है, जिन घरों के माँ–बाप पाँच साल से अब तक एकांतवास (आइसोलेशन) में हैं।"

कविता

समय मिले या न मिले तुम आना

सुभाष चन्द्र झा, विशेष सचिव
(बिहार प्रशासनिक सेवा)
मो0–9431208428

तुम आना
जब रात ख़्यालों में गुज़रे
वक़्त रेत की तरह फ़िसले
तुम आना

तसव्वुर की तस्वीर बनकर
थाम लेना फ़िसलते हुए इस वक़्त को
जैसे थामे रहता है पेड़
साहिल पर खड़ी बेताब क़श्ती को
एक डोर के सहारे
तुम आना

जब गुलाब की पंखुड़ियाँ मुरझाने लगे
अपनी महक़ वो ख़ुद भुलाने लगे
जब पत्ते गिरने लगे टूट कर शाख़ा से
हवा अंगारे बरसाने लगे
पत्थरों पे धूप आकर ठहरने लगे
तुम आना बारिश की बूंदों को लेकर
जैसे चांद आता है फ़लक पर सितारे लिए
तुम आना
जब तुमको मोहब्बत की अहसास हो
जब मुझसे मिलने की तुम्हें भी चाहत हो
आना तभी जब तुम सिर्फ़ मेरे लिए हो
आना तो जाने के लिए मत आना

आना अगर पाने की तड़प हो ज़ेहन में
जैसे ख़्वाब आते अनज़ाने से
न बंधन होता, न ख़्वाहिश होती
आना कि मुझ–सा यायावर कोई
अपनी भूली मंज़िल को फ़िर छू ले

ऐसा आना तुम जैसे आते हैं पाख़ी घोंसलों में
पतझड़ के बाद आता है वसंत
जैसे आता है धैर्य अनवरत् दुःख के बाद
जैसे भटक फिर थक जाने के बाद
आंख़ों के आगे अनायास आ जाता है रास्ता
जैसे बरसों के बाद किसी भूले की आती है चिट्ठी
ख़लाई के बीच जैसे आती है हिचकी
जैसे लंबी प्रतीक्षा के बाद आती है
मिलन की अनमोल घड़ी
तुम आना जब वेदना मेरी अधरों तक आकर रुक जाए
पर कुछ कह न पाए
जब पतझड़ में मधुमास खिले
जब मिट जाए बीच की सारी सीमा–रेखा
मृदु नेह अर्पित हो मिलन पर
आना वसंत की बयार की तरह
'पूनम' का उजाला लिए तम हरने आना
जीवन स्रोत के शून्य में संपूर्ण करने आना
जैसे पलाश के फूल आते हैं बसंत आने पर
जैसे गुलमोहर खिलता है पतझड़ जाने पर
आना तो ऐसे जैसे
सावन में आती है बरख़ा
जैसे आती है कलियां बागों में
सूख़ने के वाबजूद अपनी महक नहीं छोड़ती
जैसे चाहे जितनी लंबी घोर अंधेरी रात हो
मगर सुबह आ ही जाती है
जैसे नदी के दो किनारे एक–दूजे से
जुदा–जुदा रहकर भी मुद्यतों
साथ–साथ चलती ही जाती है

तुम आना इन्द्रधनुष बन कर
जब मेरी ज़िन्दगी स्याह रात के साये में हो
दिल किसी अंज़ान की तलाश करने लगे
शोर में कहीं जब आवाज़ मेरी खोने लगे
तुम थाम लेना मेरा हाथ ताकि मैं
खोने से पहले तुम्हें पा सकूं
लिख सकूं ज़िन्दगी का वह अध्याय
जो अब तक लिख नहीं सका
बस रेत पर नाम लिखा था, हवाओं ने मिटा दिया
आना जब समय मिले
जब समय ना मिले, तब भी आना
जैसे चूल्हे में धीरे–धीरे आती है आंच
जैसे मंगल के बाद आता है बुध
पायल की ध्वनियों में गुंज़ित मधुमास लिए
अधरों पर मृदु हास लिए तुम आना
राह चलते किसी प्रेमी युगल को देख
यदि तुम्हें हमारा रिश्ता याद आए
तुम आना मेरे आंसू पोंछने के लिए नहीं
मुझे और आंसू देने के लिए आना

तुम आना क्योंकि तुम आना चाहती हो
क्योंकि तुम्हीं मेरी प्रेम–कविता हो
जीवन की द्रूत मझधार में
हिलोरें लेते उफ़नते ज़्वार में
द्वार खुला है, अन्दर आ जाओ
कोई भी बहाना बनाकर आ जाओ
होठों पे रसधार भरे अंगार लिए
सांसों में प्रश्नों का आकुल आकाश लिए
चंदन–सी सुरभित, कस्तूरी–सी महमहाती
पावस की रिमझिम–सी, मादक मज़बूरी–सी
मां के आशीष सी, भाभी की बिंदिया–सी
सारी बाधाएं तज, बलखाती नदिया बनकर
मेरे तट आना एक बार ही सही
गीत में लय, गति में ऊर्ज़ा
श्वास में प्राण, देह में सुगंध की तरह
तुम आना
बेशक तुम मत आना
बस कह देना कि आऊंगी
तुमको आना है तो आ जाओं
इसी आलम में इसी पल पूरे आना
तथा आना कभी वापस न जाने के लिए
तुम खुटी होगी पर सच्ची होगी
तुम आना, कभी चली आना
तुम आना ठहर जाने के लिए
पूरे आना
तुम्हे आधा–आधा पाकर
मुझमें थकान होने लगती है
संबंधों की परिधि में तो
तुम्हें कभी नहीं रखा
किसी अद्‌भुत संबंध में बंध कर आना
चाहें पूर्व जन्म का ही क्यों न हो
मैं तेरा बसंत, तू मेरी बरसात
मैं मुसाफ़िर खुली धूप का,
तू पीपल की घनी छांव
आना तुम, ज़रूर आना
जब ग़हराए प्यार की प्यास
जब गदराए टेसू कचनार
जब लज़ाए डाल पे हरसिंगार
जब दिल में निष्कंप ज्योंत्सना की तरह
ज़लती हो प्रेम–कविता जैसी निष्कपट याद
और मन में चुभती हो
नीली सुनहली लौ की तरह
प्रणय–कामना की अतृप्त चाह
जब अहसास के अधूरे कोने में
चढ़ी न हो गर्द–गुब्बार
जब तलब का खुमार हो बेशुमार
आना, जैसे बारिश में अचानक
कौंध जाए विद्युत की लपटें
जैसे भीषण गरमी में छत पर सोते हुए
दिख जाए कोई मनचाहा स्वप्न

आना, पास आकर छू लेना मुझको
एक बार फ़िर तुम
और देखना बाकी है सिहरन वहां आज भी
जहां छुआ था तुमने पहली बार मुझे
झुकना, जैसे धूप की ओर
झुक जाए कोई खूबसूरत अधखिला लाल गुलाब
और एकटक देखना
बसी है स्मृतियों में अब भी
वही गुलाबी सुगंध तुम्हारी
थाम लेना मेरा हाथ उसी तरह
महसूस कर लेना मेरा वही प्यार
पुकारना उसी जगह से और
सुन लेना प्रतिध्वनि में अपना ही नाम
मुझे आज भी याद है
भीनी–भीनी–सी तुम्हारी खुशबू
जो रास्ते भर लिपटी रही मुझसे बेहिसाब
सोंधी–सोंधी, महकी–बहकी
जब उमड़–घुमड़ घिरी और ढक ली
सब ओर से मुझे
तुम्हारी रेशमी जुल्फ़ों की घनघोर काली घटा

ऐसे ही आना तुम खोज़ते हुए अपना रास्ता
'पूनम' की अलसाई मसृण चांदनी की तरह
आ सको तो आना, बसंत बहार की तरह
प्यार की संदली शबनमी बरसात की तरह
ताकि बारिश में भीगते हुए
पी सकूं एक बार फिर अमृत पेय
आना, जैसे ठंढ़ी हवा का नर्म झोंका
जब आती है बदलियां
रूठे सावन को मनाने
आना, बेगवती उद्याम नदी जैसी
मुझे बहाकर साथ ले जाने के लिए

आना, जब दिल हो साफ़–सफ्फ़ाक
खुले आसमान की तरह
हवा की तरह स्पष्ट हों दिशा में

समन्दर के नीले विस्तार–सा उन्मुक्त हो मन
शिवालय–सा पवित्र हो तन
धरती–सा अखंडित हो कुंआरापन
और पर्वत–सा अडिग हो मुझ पर विश्वास

देख लेना, मैं बदल जाऊंगा एकदम
अगर तुम आ गई अचानक मेरे पास
इतनी अछूती तुम कि समेट लूं संपूर्ण तुम्हें
अपने अस्तित्व के पोर–पोर में सरापा
इतनी कुंआरी कि पहचान लूं हल्का–सा भी स्पर्श
इतनी नाजुक कि जान लूं दूर से ही कदमों की आहट

आना तुम, तनहा ज़र्द रात के
सांय–सांय करते सुनसान अंधेरे में
खामोशियों के दरम्यां चुपके दबे पांव
मेरे सवालों का सारांश, ज़वाब बनकर
अनुत्तरित है सारे प्रश्न तुम्हारी प्रतिक्षा में

आना एक बार, चाहे क़यामत हो
तुम्हारा इंतज़ार आज भी वैसा ही है
प्यार आज भी वैसा ही है
अमूमन तुम बन जाती हो आसमान
और मैं तारा बन कर तुझमें बिख़र जाता हूँ
चाहा जिसको मिल न पाया
जो मिला उसको संभाल न पाया

कैसा सावन जिसमें न हो बरसात
आना, तुम आज भी ख़्वाबों में आती हो
जगाकर नींद से मुझे
यादों के भंवर में डुबो जाती हो
स्वाति नक्षत्र की बूंद तुम
मैं चातक प्यासा सावन
समझ नहीं पाया कभी
मेरा दामन छोटा है या
तुम्हारा आंचल बड़ा
क्यों समेट नहीं पा रहा

अलंकार हो, उपमा हो, शब्द–विन्यास हो
वर्ण तुम्हीं स्वर–व्यंजन
पूर्ण तुम्हीं से काव्य–कामिनी कंचन

तुम यूं ही चली आना कभी
मीठी–सी धूप लिए प्रेम के आंगन में
गीले तकिये से बिस्तर की सलवट तक
हौले–से एक–दूजे के कान में हम कह देंगे
अलविदा!
आसान नहीं होता इस ज़हां में
हर सोच को अंज़ाम तक ले जाना
सबसे सुन्दर प्रेम–अंज़ाम तक ले जाना
सबसे सुन्दर प्रेम–कविता को भी
इसी मोड़ पर छोड़कर आगे बढ़ जाना होता है
आना समय मिले न मिले।

कविताएँ

सत्या शर्मा कीर्ति
रंची (झारखण्ड)
7717765690

जाने कब बूढ़ी हो गयी माँ

आज अचानक जब कहा
मेरी माँ ने मुझसे
लिखो न मेरे ऊपर भी कोई कविता
और फिर ध्यान से देखा मैंने माँ को
आज कई दिनों बाद

अरे! चौंक–सी गयी मैं
माँ कब बूढ़ी हो गयी
सौंदर्य से दमकता उनका
वो चेहरा जाने कब ढक गया झुर्रियों से

माँ के सुंदर लम्बे काले बाल
कब हो गये सफेद
कब माँ के मजबूत कंधे
झुक से गये समय के बोझ से

अचम्भित हूँ मैं... !
ढूँढ़ती रही मैं नदियों, पहाड़ों
बगीचों में कविता
और मेरी माँ
मेरी ही आँखों के सामने होती रही बूढ़ी
भागती रही भावों की खोज में
खोजती रही संवेदनाएँ
पर, देख नहीं पाई जब
प्रकृति खींच रही थी
माँ के जिस्म पर अनेक रेखाएँ
सिकुड़ती जा रही थी माँ
तन से और मन से
और मैं ढूँढ़ रही थी प्रकृति में
अपनी लेखनी के लिए शब्द

जब बूढ़ी आँखें और थरथराते हाथों से
जाने कितनी आशीषें लुटा रही थी माँ
तब मैं दूसरों के मनोभावों में
ढूँढ रही थी कविता

और इसी बीच जाने कब
मेरे और मेरी कविता के बीच
बूढ़ी हो गयी माँ।

हल्दी कुमकुम

पता है माँ
मेरी विदाई के वक्त
जो दी थी तुमने
अपनी उम्रभर की सीख
लपेटकर मेरे आँचल में

चौखट
लाँघते वक्त
मैं टाँग आई उसे
वहीं तेरी देहरी पर

गवाह है
नीम का वो चबूतरा
तेरी बेबसी और
खामोशी का
इसलिए मैं
चुराकर ले आई
तेरे टूटे और बिखरे
ख़्वाब
जिसमें मैं प्रत्यारोपित
कर सकूँ

उम्मीदों और हसरतों
की टहनियाँ
ताकि जब
मेरी बेटी विदा हो
मैं बाँध सकूँ
उसके आँचल में
आत्मसम्मान का
हल्दी कुमकुम

कविताएँ

शांति सुमन
जमशेदपुर
मो0–8789390597

इन्तजार आँखों का

आपसदारी रिश्ते–नाते
कहाँ गये
समझौते केवल समझौते
नये–नये
इन्तजार आँखों का
काला हिरण हुआ
खोजे जंगल में जल
प्यासा कंठ सुआ
बोल सहज मीठे–मीठे से
कहाँ गये

अब आएगी आँधी
कहकर गई हवा
रंग बचाती अपना
टहनी ओट जवा
परस मुलायम हाथों वाले
कहाँ गये

सपनों में नींद भरी
अब केवल सपने
झीलों की लहरों में
सुरवाले गहने
लेकर नाम पुकारे जो दिन
कहाँ गये
समझौते केवल समझौते
नये–नये

कितने आसमान

रेतों पर निशान देखे हैं
नदी सुबह से ही रोई है

नदी किनारे के पेड़ों पर
चिड़ियाओं का आना–जाना
सरपत के झुरमुट में सुख से
बैठे कीटों का बतियाना

कितने आसमान देखे हैं
रातों नहीं नदी सोई है

मंदिर के कलशों पर आकर
रूकने लगीं ललायी किरणें
खुशियों के कालीन बिछे हैं
खिड़की खोल रखी है घर ने

उगते कियाबान देखे हैं
नदी हौसले में खोई है

बिछाई संघर्षों ने राहें
राहों पर चलने के सपने
कोई नहीं अकेलापन है
लगते तो हैं सारे अपने

सारे दुःख समान देखे हैं
कहने वाला भी कोई है।

खेत के मेड़ों से

गाती है अब गीत हवा
चौमासे के
फूलों की खुशियों में
मौसम है शामिल

घर से निकली दिनभर
खेतों–खलिहानों में
छोटी बच्ची घर–
खेतों में है शामिल

रिश्ते अब जुड़ते गये
खेत के मेंड़ों से
बाबा से ही दिखते
बतियाते पेड़ों से
सुबहों में ही अब
दुपहर भी है शामिल

लीपती है आज पीली
मिट्टी से घर को
गेरू से लिखकर
न्योतेगी देव–पितर को
अब खुशियों में नया
धान भी है शामिल

खिलेगी केतकी

देखना इस डाल पर
खिलेगी जब केतकी
घोल देगी रंग को हवाओं में खेत की

ईख के पत्ते हिलेंगे पुकारेंगे
ताल को
आँख खोलता कमल हिकोरता
शैवाल को
देखना कथा होगी पटेरों पर रेत की

कुछ भी कहा जाता जब ऐसे नहीं
नदी से
भीगी आँख लिखती कई उलाहने
सदी से देखना फिर अभी ही
दोस्ती धूप–बेंत की

सोयेंगे पंख की छाँह में बच्चे
चिड़िया के
हल्दी में घुले–मिले हैं लाल रंग
पुड़िया के
देखना सुबह रात से रंगेगी चैत की।

सूचना

हिन्दी साहित्य के उद्‌भव और विकास में उत्तरप्रदेश का योगदान महत्वपूर्ण रहा है, जिसे हम सदी के अंत तक विभिन्न विधाओं में रचे गये विपुल साहित्य को देखकर समझ सकते हैं, लेकिन परिस्थितियाँ चाहे जो कुछ भी हो, कारण कोई भी रहा हो 'उत्तरप्रदेश का हिन्दी साहित्य' जिस मूल्यांकन की मांग करता है, वह नहीं हो पा रही है और शायद वह आज अपेक्षित है। इसलिए इस स्थिति को कुछ हद तक दूर करने के लिए मैंने एक संकल्प लिया है कि 'उत्तरप्रदेश के हिन्दी साहित्य का इतिहास' एक ग्रंथ का सृजन किया जाय। जिसमें सिद्ध साहित्य से लेकर नई पीढ़ी के उन सभी साहित्यकारों की साधनाओं का उल्लेख है, जो उत्तरप्रदेश के हिन्दी साहित्य को गौरवान्वित करती है। लेकिन मेरा यह संकल्प या प्रयास आपके सहयोग के बिना कोई आकर ग्रहण कर ही नहीं सकता, इसलिए मैं चाहूँगा कि आप अपना पूर्ण परिचय (साहित्यिक उपलब्धि के साथ) मुझे प्राप्त कराने में मदद करें।

यह काम आप सिर्फ अपने लिए ही नहीं, बल्कि अपने क्षेत्र से उन साहित्यकारों के लिए भी करें, जिन रचनाकार के व्यक्तित्व से आप पूर्णरूपेण परिचित हैं। आपका यह सहयोग ग्रंथ को वैज्ञानिक और विशिष्ट रूप प्रदान करने में बेहद सहयोगी सिद्ध होगा।

द्रष्टव्य–सन् 2021 ई. के मार्च तक की ही प्रकाशित कृतियाँ ही ग्रंथ में उल्लेख किया जा सकेगा। प्रकाशित सभी कृतियाँ या उसका आवरण पृष्ट की छायाप्रति भेजना अनिवार्य होगा। यह बात उन साहित्यकारों पर भी लागू होगी, जिनके सम्बन्ध में आप जानकारियाँ देना चाह रहे है।जिस पुस्तक का सृजन हिन्दी खड़ी बोली में नहीं किया गया हो, बल्कि हिन्दी में अनुवाद किया गया हो, तो उस पुस्तक को इस ग्रंथ में मूल्यांकन हेतु स्वीकार नहीं की जाएगी।

दयानन्द जायसवाल
मौर्या जुबली, भागलपुर 813210
मो. 9931240303

सुसंभाव्य
प्रकाशन

कार्यालय
भवानी कॉम्पलेक्स, पटल बाबू रोड
गुरुद्वारा गली के सामने, भागलपुर (बिहार)
Mob.: 9931240303